परमात्मा कहाँ है?

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय

परमात्मा कहाँ हैं?

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय
मुख्यालय : पाण्डव भवन, माऊण्ट आबू (राजस्थान)

प्रकाशक :

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व-विद्यालय
मुख्यालय : पाण्डव भवन, माऊण्ट आबू (राजस्थान)

पुस्तक मिलने का पता :

साहित्य विभाग
प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व-विद्यालय
मुख्यालय : पाण्डव भवन, माऊण्ट आबू (राजस्थान)

मुद्रक:
ओम् शान्ति प्रेस
शान्तिवन, तलहेटी
आबू रोड़–307026
(राजस्थान)

© **Copyright :** Brahma Kumaris Ishwariya Vishwa-Vidyalaya, Mount Abu (Rajasthan)

No part of this book may be printed without the permission of the publisher.

अमृत सूची

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	परमपिता परमात्मा का स्वरूप क्या है और वह कहाँ है?	5
2.	क्या परमात्मा घट-घट वासी अथवा सर्व-व्यापक है?	6
3.	लोहे में अग्नि का दृष्टान्त	6
4.	दूध में चीनी के दृष्टान्त पर विचार	7
5.	पुष्प में सुगन्धि के दृष्टान्त पर विचार	8
६.	यदि परमात्मा सर्व-व्यापक होते तो क्या आत्मा पतित होती?	10
7.	क्या मन में शुभ-संकल्पों की उत्पत्ति के कारण परमात्मा को सर्वव्यापक मानना ठीक है?	11
8.	क्या अशान्ति देखते हुए भी शान्तस्वरूप परमात्मा को सर्व में व्यापक मानना उचित है?	12
9.	क्या परमात्मा व्यापक होते हुए भी भासित न हों — ऐसा हो सकता है? आत्मा पर आवरण का दृष्टान्त	15
10.	चुम्बक और सूई के दृष्टान्त पर विचार	18
11.	माला और मणकों के दृष्टान्त पर विचार	18
12.	'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' का दृष्टान्त	19
13.	सर्व-व्यापक मानने की हठधर्मी का कारण	19
14.	क्या परमात्मा का कोई रूप है?	23
15.	क्या परमात्मा इतना सूक्ष्म हो सकता है?	27
16.	परमात्मा सर्वशक्तिमान कैसे है?	28
17.	सागर और बुद्बुदे के दृष्टान्त पर विचार	30
18.	परमात्मा सर्वव्यापक नहीं तो ज्ञान-सागर कैसे है?	31
19.	परमात्मा सर्वव्यापक नहीं तो फलदाता कैसे है?	33
20.	परमात्मा का इतना छोटा आकार!	36

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
21.	शास्त्र क्या कहते हैं?	37
22.	गीता में क्या लिखा है?	37
23.	परमात्मा सर्वत्र नहीं है, परन्तु सर्वत्र साक्षात्कार करा सकता है।	39
24.	क्या परमात्मा का कोई रूप है, या सर्वत्र है?	41
25.	क्या आत्मा ही परमात्मा है?	49
26.	क्या आत्मा और परमात्मा अभिन्न हैं?	51
27.	क्या आत्मायें अलग-अलग हैं?	51
28.	क्या चीनी के खिलौनों की तरह केवल नाम-रूप ही का भेद है?	52
29.	क्या भेद केवल नाम-रूपात्मक और उपाधि का है?	53
30.	आत्माओं के मौलिक स्वभाव में भिन्नता?	54
31.	सांप और रस्सी में भ्रान्ति का दृष्टान्त	55
32.	आत्माओं का अनेकत्व भ्रान्ति के कारण नहीं है	56
33.	परमात्मा माया से आवेष्ठित नहीं होता	58
34.	सर्व खल्विदं ब्रह्म के सिद्धान्त में त्रुटि	59
35.	माया क्या है?	60
36.	माया, जीवात्मा, परमात्मा — एक स्पष्टीकरण	61
37.	परमात्मा और योग के बारे में स्पष्टीकरण	62
38.	परमात्मा का दिव्य-रूप भी है और वह हमारा पिता है	63
39.	मन-बुद्धि, तत्वमSसि और सोSहम् के बारे में स्पष्टीकरण	64
40.	अन्य धर्मों में परमात्मा के स्मरण चिह्न	65
41.	परमात्मा कहाँ है?	68
42.	परमपिता परमात्मा से योग-युक्त होने का अभ्यास	70

परमपिता परमात्मा का स्वरूप क्या है और वह कहाँ हैं?

आज बहुत-से लोग मानते हैं कि परमात्मा सर्वव्यापक है। परन्तु इस बात को सुनकर अन्य लोग प्रश्न करते हैं कि – "यदि परमात्मा सर्वव्यापक है, सर्वशक्तिमान् भी है, हमारे परमपिता भी हैं और शान्ति के सागर भी हैं तो संसार में सुख और शान्ति क्यों नहीं?" इसका युक्ति-युक्त उत्तर न मिलने के कारण वे नास्तिक बन गये हैं।

अन्य लोग कहते हैं कि – परमात्मा हमसे कोई अलग नहीं है, बल्कि आत्मा स्वयं ही परमात्मा है। परन्तु प्रश्न उठता है कि यदि आत्मा स्वयं ही परमात्मा है तो भक्ति, उपासना, योग, यज्ञ-तप आदि करने का क्या अर्थ है? यदि आत्मा स्वयं ही परमात्मा है, तब तो फिर वास्तव में 'परमपिता' नाम की तो कोई सत्ता ही न रही, बल्कि केवल आत्मा ही एकमात्र सत्ता रही। तब संसार को सुधारने एवं मनुष्य को मुक्ति और जीवनमुक्ति की राह दिखाने वाला तो कोई भी न रहा? अत: गम्भीरता से विचार करने वालों का यह मत भी विवेक-संगत नहीं मालूम होता और वे उलझन में पड़ जाते हैं कि आखिर परमात्मा कौन है, कहाँ है, और हम योग किससे लगायें?

कुछ लोग ऐसे भी हैं जो कि परमात्मा को आत्माओं से अलग मानते हैं परन्तु वे परमात्मा का कोई-न-कोई शारीरिक आकार मानते हैं। इस विषय में अन्य लोग कहते हैं कि शरीर वाला तो परमात्मा हो नहीं सकता, क्योंकि वह अनादि, अविनाशी और सर्व का रचयिता है।

वास्तव में परमात्मा का क्या स्वरूप है और वह कहाँ हैं? – इसका परिचय परमात्मा स्वयं ही दे सकते हैं। उनके द्वारा मिले ज्ञान, योग एवं दिव्य-साक्षात्कारों के आधार पर इस पुस्तक में स्पष्ट किया गया है कि परमपिता परमात्मा का स्वरूप क्या है और वह कहाँ है? अत: ईश्वरानुभूति के लिए **'प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय** के ४००० ईश्वरीय सेवा-केन्द्रों में से किसी भी सेवा-केन्द्र पर पधारकर सहज ज्ञान एवं राजयोग आदि सीखने की आवश्यकता है।

– ब्र.कु. जगदीश

क्या परमात्मा घट-घट अथवा सर्वव्यापक है?

जिज्ञासु – जैसे लोहे से अधिक सूक्ष्म होने के कारण अग्नि लोहे में व्यापक हो सकती है और होंती है, वैसे ही शान्ति के सागर, आनन्द के सागर, परम पवित्र, चैतन्य स्वरूप परमात्मा भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म होने के कारण हरेक आत्मा में व्यापक हो सकते हैं और वह सर्वव्यापक हैं भी। आप लोहे के एक गोले को अग्नि में डालकर कुछ समय बाद उसे किसी भी तरफ से छूयेंगे तो आपको उसमें सर्वत्र अग्नि की व्यापकता का अनुभव होगा और यदि लोहे का गोला तप कर लाल हो गया हो तब तो आप तुरन्त जान जायेंगे कि उसमें अग्नि है।

ब्रह्माकुमारी – लोहे के गोले में गरमी को अर्थात् अग्नि के गुण को अनुभव करके अथवा अग्नि की लाली को देखकर ही तो आपने यह निष्कर्ष लिया कि लोहे में अग्नि व्यापक है? यदि लोहे में गरमी अथवा जलाने का गुण न हो या ताप की लाली न हो तब तो आप कहेंगे कि लोहे में अग्नि व्यापक नहीं है। **इसी प्रकार, यदि चैतन्य-स्वरूप शान्ति-स्वरूप, आनन्द-स्वरूप, परमपवित्र परमात्मा के चेतनता, शान्ति, आनन्द, प्रेम, पवित्रता आदि गुण सर्व में व्यापक न हों तब तो यह कहना निराधार और असत्य ही होगा कि 'परमात्मा सर्वव्यापक है।'**

आज चारों ओर दृष्टि डालने पर आप स्पष्ट देखेंगे कि जन-जन के मन में शान्ति, आनन्द, प्रेम, पवित्रता आदि ईश्वरीय गुण नहीं हैं। बल्कि लोगों के मन में अशान्ति, दुःख, वैर-विरोध, ईर्ष्या-द्वेष, विकार, अपवित्रता आदि ही दिखाई देते हैं। इसलिए ही तो लोग मन्दिरों, गुरुद्वारों, मस्जिदों और गिरजाघरों में जाते हैं और अनेक उपाय करते हैं और परमात्मा से प्रार्थना

करते हैं कि जीवन में शान्ति, आनन्द और पवित्रता आये। इससे तो स्पष्ट है कि परमात्मा सर्वव्यापक नहीं है। ऊपर अग्नि और लोहे का जो दृष्टान्त दिया गया है, उससे तो यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि लोहे में गरमी न हो तो लोहे में अग्नि का न होना सिद्ध होता है। इसी प्रकार, सर्व में शान्ति, आनन्द आदि ईश्वरीय गुण आदि न होने से तो सर्व में परमात्मा का न होना ही सिद्ध होता है।

किसी शरीर द्वारा चेतनता, अनुभव, स्मृति, इच्छा आदि व्यक्त होने पर ही तो माना जायेगा कि उस शरीर में आत्मा है (यद्यपि वह भी शरीर में सर्वव्यापक नहीं है, बल्कि बिन्दु-रूप है।) इसी प्रकार, यदि सर्व में सत्, चित्, आनन्दस्वरूप और प्रेमस्वरूप परमात्मा व्यापक हैं तो आत्मा के शरीर से निकल जाने पर भी शरीर में चेतनता का लक्षण दिखाई क्यों नहीं देता? पुनश्च, सभी देहधारियों में शान्ति, प्रेम आदि के गुण क्यों नहीं हैं? तो स्पष्ट है कि परमात्मा सर्वव्यापक नहीं है।

क्या परमात्मा दूध में चीनी की तरह अदृश्य परन्तु सर्वव्यापक है?

जिज्ञासु – परमात्मा है तो सर्वव्यापक ही, परन्तु जैसे दूध में घुली हुई चीनी उसमें सर्वव्यापक होते हुए भी दिखाई नहीं देती अथवा जैसे फूल में सुगन्धि होते हुए भी वह अदृश्य है, उसी प्रकार परमात्मा भी दिखाई नहीं देते, क्योंकि उनका कोई रूप नहीं है, बल्कि वह सर्वव्यापक और अरूप हैं।

ब्रह्माकुमारी – फूल में जो सुगन्धि है, उसकी व्यापकता का अनुभव होता है। इसी प्रकार दूध में चीनी की व्यापकता का अनुभव भी मिठास के रूप में अनुभव होता है। यदि दूध में मिठास न हो तो उसमें चीनी की व्यापकता नहीं मानी जायेगी। ठीक इसी प्रकार, चूँकि सर्व में परमात्मा के शान्ति,

आनन्द, प्रेम आदि गुण नहीं हैं, इसलिये परमात्मा को सर्वव्यापक नहीं माना जा सकता है।

पुनश्च, यद्यपि सुगन्धि (गुण) का रूप नहीं है, तथापि फूल रूपी गुणी का तो रूप है। इसी प्रकार यद्यपि मिठास का रूप नहीं है तथापि चीनी अथवा दूध का तो रूप है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि गुण का रूप भले ही न हो, गुणी का तो रूप होता ही है। इसी तरह यद्यपि चेतनता, शान्ति, आनन्द, प्रेम, पवित्रता, इत्यादि का कोई रूप नहीं है, तथापि परमात्मा जिसके यह गुण हैं, उसका अपना रूप अवश्य है। हाँ, वह रूप प्रकाश-स्वरूप, अव्यक्त और दिव्य है और उसे इन चर्म-चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता — यह एक अलग विषय है। अत: ऊपर के दृष्टान्त से तो यह सिद्ध होता है कि परमात्मा सर्वव्यापक नहीं है, बल्कि उसका एक अपरिवर्तनीय, अविनाशी, दिव्य एवं प्रकाशमय रूप है।

क्या परमात्मा पुष्प की सुगन्धि की न्याई अरूप हैं?

जिज्ञासु – यदि किसी मनुष्य के सूंघने की शक्ति ठीक काम न कर रही हो तो उसे फूल में व्यापक सुगन्धि का अनुभव नहीं होता। इसी प्रकार, यदि किसी मनुष्य का मुख कड़वा हो तो उसे दूध के मिठास का अनुभव नहीं होता, बल्कि कई बार दूध कड़वा भी लगता है। अत: फूल की सुगन्धि का अनुभव न होना या दूध में मिठास का अनुभव न होना इस बात को प्रमाणित नहीं करता कि फूल में सुगन्धि व्यापक नहीं है अथवा दूध में चीनी व्यापक नहीं है, बल्कि हो सकता है कि मनुष्य के सूंघने या चखने की शक्ति अथवा योग्यता ठीक काम नहीं करती हो। इसी प्रकार, परमात्मा के शान्ति, आनन्द, प्रेम, आदि गुणों का सर्वत्र अनुभव न होने का यह मतलब नहीं है कि परमात्मा सर्वव्यापक नहीं है, बल्कि मनुष्य में आज जो काम-क्रोधादि विकार हैं उनके कारण ही,

उसे सर्वत्र, शान्ति और आनन्द का अनुभव नहीं होता वर्ना परमात्मा तो सर्वत्र है ही!

ब्रह्माकुमारी – मनुष्य में सूंघने या चखने की शक्ति अथवा योग्यता तभी ठीक काम नहीं करती जब उसे कोई शारीरिक रोग हो। मनुष्य को शारीरिक रोग तभी होता है जब वह अज्ञान के कारण, ठीक मार्ग-प्रदर्शना न होने के कारण अथवा काम-क्रोध-लोभादि किसी मानसिक विकार के कारण या बुद्धि की भ्रष्टता के कारण कोई नियम-विरुद्ध, अनुचित या अपवित्र कर्म अथवा पाप-कर्म करता है। मनुष्य के काम-क्रोधादि मानसिक विकार भी मनुष्य की अज्ञानता, आत्मिक-शक्ति की कमी अथवा किसी योग-स्थित एवं शक्तिमान् एवं ज्ञानवान की मार्ग-प्रदर्शना प्राप्त न होने के कारण ही होते हैं। अत: प्रश्न उठता है कि यदि सर्व में ज्ञान के सागर, शान्ति के सागर, परम-पवित्र, योगेश्वर, एवं सर्वशक्तिमान् परमात्मा व्यापक हैं तो मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट ही क्यों हुई, उसके मन में विकार ही क्यों उत्पन्न हुए, उसको अधिकार-पूर्ण रीति से रोका क्यों नहीं गया या उसकी सही मार्ग-प्रदर्शना क्यों नहीं हुई? यदि पतित-पावन, परम-पवित्र, सर्वशक्तिमान्, योगेश्वर और दिव्य-बुद्धि के दाता परमात्मा सर्व-व्यापक हैं तब तो किसी की भी बुद्धि-भ्रष्ट होनी ही नहीं चाहिये, किसी में आत्मिक शक्ति की हीनता का अनुभव भी नहीं होना चाहिये और मनुष्यात्मा में अपवित्रता आनी ही नहीं चाहिये, उसे मार्ग-भ्रष्ट या कर्म-भ्रष्ट भी नहीं होना चाहिये और उसके सूंघने या चखने आदि की योग्यता में भी त्रुटी नहीं होनी चाहिये।

अत: ब्रह्मलोक से पवित्र स्थिति में आने के बाद इस लोक में धीरे-धीरे आत्मा में अपवित्रता या विकारों इत्यादि का आना ही सिद्ध करता है कि मुक्ति और जीवनमुक्ति के मार्ग-प्रदर्शक, पतित-पावन सद्गतिदाता एवं दिव्य-बुद्धि

के दाता परमात्मा उसमें व्यापक नहीं थे और न हैं, वर्ना न आत्मा में मानसिक विकार होते और न ही उसे शारीरिक रोग होते। अत: आपके दृष्टान्त से अर्थात् लोगों में रोगों तथा विकारों के होने से तो परमात्मा का सर्वव्यापक न होना ही सिद्ध होता है।

यदि परमात्मा सर्वव्यापक होते तो क्या आत्मा पतित होती?

जिज्ञासु – परमात्मा है तो सर्वव्यापक ही, परन्तु फिर भी मनुष्यात्मा, बुद्धि-भ्रष्ट, विकार-वश और कर्म-भ्रष्ट हो जाती है, क्योंकि परमपिता परमात्मा साक्षी हैं; वह आत्मा को कर्म करने की पूरी स्वतन्त्रता देते हैं। वह न्यायकर्त्ता के रूप में आत्मा को कर्म करने का केवल फल ही देते हैं।

ब्रह्माकुमारी – हम देखते हैं कि लौकिक नाते में भी मनुष्य के माता-पिता या उसके मित्र, हितैषी या मार्ग-प्रदर्शक उसे बुरा काम न करने की सलाह देते हैं और जहाँ तक वह अपने अधिकार का प्रयोग करना उचित समझते हैं, वह उसे बुरा काम करने से रोकते भी हैं। अत: यदि परमपवित्र एवं योगेश्वर परमात्मा सर्वव्यापक होते तब पहले तो उनके प्रभाव से मनुष्य के मन में बुरा विचार अथवा कोई मानसिक विकार पैदा ही न होता और फिर, यदि कोई बुरा संकल्प उत्पन्न होता भी तो परमात्मा, जो कि हमारे परमपिता, सच्चे मार्ग-प्रदर्शक एवं परम मित्र हैं, वे उसे अधिकार-पूर्वक बुरे कर्म से रोक देते, वह साक्षी होकर न बैठे रहते, क्योंकि वह केवल न्यायकर्त्ता ही नहीं है, वह तो हमारे माता-पिता, परम-शिक्षक एवं परमगुरु भी हैं। वह तो परमदयालु एवं कृपालु माने गए हैं।

अत: परमात्मा को सर्वव्यापक मानते हुए मनुष्यात्मा के बुद्धि-भ्रष्ट, कर्म-भ्रष्ट एवं विकार-वश होने की इसलिए सम्भावना मानना कि परमात्मा सदा साक्षी ही रहते हैं, गोया परमात्मा को दयालु, कृपालु, हितैषी, मित्र, माता-

पिता, मार्ग-प्रदर्शक और पतित-पावन न मानना है और उसे पत्थर जैसे कठोर स्वभाव वाला, स्नेह और सम्बन्ध से रहित मानना है। क्या परमात्मा का यह लक्षण है कि वह मनुष्य को पाप करता हुआ देखकर भी उसे छूट देकर बाद में दण्ड देने ही का काम करता है? नहीं, नहीं! ऐसा काम तो लौकिक माता-पिता भी नहीं करते। परमात्मा के बारे में ऐसा कहना तो गोया उसके प्रति मनुष्य के मन में अश्रद्धा, स्नेह-हीनता और उदासीनता का भाव लाना है।

क्या मन में शुभ-संकल्प की उत्पत्ति के कारण परमात्मा को सर्वव्यापक मानना ठीक है?

जिज्ञासु – शायद ऐसा भी हो सकता है कि बुरा काम करने से पहले मनुष्य के मन में कई बार उस कर्म को न करने का जो संकल्प उठता है, वह परमात्मा की प्रेरणा से ही उठता हो?

ब्रह्माकुमारी – इसका उत्तर तो आपने अभी तक नहीं दिया कि यदि परमपवित्र परमात्मा व्यापक हैं तो बुरा संकल्प उठता ही क्यों है? फिर पहले तो आप कहते थे कि परमात्मा साक्षी हैं, मनुष्य स्वतन्त्र है, अब आप कहते हैं कि परमात्मा बुरा काम न करने की प्रेरणा देता है! बुरा काम न करने के संकल्प को आपने परमात्मा ही की प्रेरणा कैसे मान लिया? बुरा काम न करने का विचार मनुष्य को स्वत: भी तो आ सकता है? आख़िर मनुष्यात्मा सदा बुरा ही तो नहीं सोचती, उसमें कुछ अच्छे संस्कार भी तो हैं। अत: यह मानना कि बुरा तो सदा मनुष्यात्मा ही सोचती है और अच्छे के लिए सदा परमात्मा ही प्रेरणा देते हैं, गोया यह मानना है कि आत्मा न कभी अच्छा सोच सकती है और न ही कभी पावन हो सकती है। यह तो ग़लत विचार है। यदि आत्मा स्वयं कभी भी अच्छा न सोचती होती तब तो उसके अच्छे कर्मों का श्रेय या फल अर्थात सुख उसे कभी भी न मिलता, बल्कि यह सदा दु:खी ही रहती।

परन्तु हम संसार में स्पष्ट देखते हैं कि आत्मा दु:ख भी भोगती है और सुख भी। इससे सिद्ध है कि आत्मा स्वयं अच्छा भी सोचती और करती है और बुरा भी। अत: मनुष्य के मन में जो अच्छा करने का संकल्प उठता है उसका प्रेरक सदा किसी सर्वव्यापक परमात्मा को मानना ग़लती करना है।

परमत्मा तो सर्व-शक्तिमान् हैं। उनकी प्रेरणा अटल है। वह सदा होकर ही रहती है। यदि अन्तरात्मा में स्थित होकर परमात्मा प्रेरणा करें तो यह कभी हो ही नहीं सकता कि मनुष्यात्मा उसे टाल कर बुरा कर्म कर दे। अत: सिद्ध है कि आत्माओं में परमात्मा व्यापक नहीं है।

दूसरी एक बात यह भी सोचने के योग्य है कि यदि कोई आत्मा विकारी और बुरे संकल्प करने वाली है तब तो वह परमात्मा से प्रेरित ही नहीं हो सकती, क्योंकि परम-पवित्र परमात्मा से प्रेरणा भी योग-निष्ठ और पवित्र मन्सा वाली आत्मा ही पकड़ सकती है। यदि कोई आत्मा पूर्ण पवित्र है ही तब तो उसे प्रेरणा की आवश्यकता भी नहीं है। अत: स्पष्ट है कि यदि कोई आत्मा विकारी है और उसमें कोई बुरा काम न करने का संकल्प उठता है और वह उसे टाल देती है तो वह संकल्प किसी अन्तरात्मा में व्यापक परमात्मा का नहीं हो सकता। पुनश्च, जबकि आपने स्वयं ही पहले कहा है कि विकारी होने के कारण आत्मा परमात्मा की शान्ति और आनन्द का अनुभव नहीं कर सकती, तो इससे अब आपको सोचना चाहिये कि विकारी आत्मा भला प्रेरणा को भी कैसे समझ और पकड़ सकती है? अत: परमात्मा सर्वव्यापक नहीं है।

क्या आत्मा में अशान्ति देखते हुए भी शान्ति-स्वरूप परमात्मा को सर्व में व्यापक मानना उचित है?

जिज्ञासु – अच्छा तो ऐसे मान लीजिए कि – "परमात्मा है तो सर्वव्यापक, परन्तु आत्मा के ऊपर आवरण आया हुआ है, इसलिये उसमें

परमात्मा के शान्ति, आनन्द, प्रेम, पवित्रता आदि गुण भासित नहीं होते।''

ब्रह्माकुमारी – यह भी ठीक नहीं है। इस दृष्टान्त के विषय मं जानने की बात यह है कि आवरण भी दो तरह का हो सकता है – एक तो द्रव का अर्थात् किसी वस्तु का, दूसरा किसी गुण का। जैसे मान लीजिये कि किसी टेबल-लैम्प के बल्ब को हम किसी अनेमल के शेड (Enamel shade) से या किसी मोटे काले कम्बल से ढक देते हैं अथवा अपनी आंखों के आइने (पुतली) को अपनी पलक से ढक लेते हैं तो शेड (Shade) का या मोटे-काले कम्बल या पलक को हम एक प्रकार का आवरण मानेंगे। ये आवरण द्रव के आवरण हैं। पलक रूपी आवरण के कारण आंख देख नहीं सकती और शेड के कारण प्रकाश या तो बहुत कम ही बाहर निकल पाता है या बिल्कुल ही नहीं निकलता। यदि हम किसी लालटैन (Lantern) के ऊपर पारदर्शी कांच (Transparent glass) की कोई चिमनी लगा दें अथवा आंख के ऊपर चश्मा लगा दें तो उन्हें आवरण कहना ग़लत होगा क्योंकि कांच की चिमनी से तो प्रकाश निकलकर बाहर फैल जाता है और चश्मे के माध्यम से तो आंख देख सकती है। आवरण तो व्यापक मोटे कम्बल को या पलक को ही कहेंगे, क्योंकि कपड़े में से प्रकाश पार नहीं हो रहा और पलक में से दृष्टि व्यापक या पार नहीं हो रही।

अब सोचने की बात यह है कि क्या आत्मा और परमात्मा के बीच किसी द्रव्य का आवरण है? यदि कहो – ''हाँ, द्रव्य का आवरण है'' तब प्रश्न उठेगा कि क्या उस आवरण में भी परमात्मा व्यापक है या नहीं? यदि आप कहें कि आवरण में परमात्मा नहीं है जैसे कि अनेमल के शेड या पलक में प्रकाश या दृष्टि व्यापक नहीं है, तब तो सिद्ध हुआ कि परमात्मा सर्व में व्यापक नहीं है। यदि आप कहें कि आवरण में भी परमात्मा व्यापक

है, तब तो आवरण को 'आवरण' कहना ही ग़लत है। जैसे कि लालटेन के ऊपर चढ़ाई गई पारदर्शी (Transparent) चिमनी को हम 'आवरण' नहीं कह सकते, क्योंकि आवरण तो एक वस्तु को ढक कर दूसरी को अलग कर देता है। दूसरी बात यह है कि परमात्मा को 'सर्वव्यापक' सिद्ध करने से पहले ही आवरण में भी परमात्मा को 'सर्वव्यापक' मान लेना तो गोया जिस बात को सिद्ध करना है उसे पहले से ही सिद्ध मानने की भूल करना है।

द्रव के आवरण के अतिरिक्त दूसरे प्रकार का आवरण गुणों अथवा संस्कारों का होता है। मान लीजिये किसी मनुष्य के मन में क्रोध उत्पन्न हुआ और उसके मन ने परिणाम न देखा ओर अपने ही किसी मित्र से रुष्ट होकर, उसे मार डाला। यह क्रोध का आवरण बुरे संस्कार का अथवा विकार का अथवा अवगुण का आवरण है। **यदि कोई कहे कि आत्मा और परमात्मा के बीच अवगुण, अज्ञान, विकार अथवा बुरे संस्कारों का आवरण है तो यह कहना भी ग़लत है क्योंकि ज्ञान-सागर, परम-पावन, परम-पिता परमात्मा जहाँ सर्वव्यापक हों वहाँ अपवित्रता और अज्ञानता का आवरण हो ही नहीं सकता – यह हम पहले भी बता आये हैं, वहाँ भी परमात्मा का ज्ञान-प्रकाश और पवित्रता होनी चाहिए। परन्तु आज हम देखते हैं कि वह नहीं है। अतः परमात्मा सर्वव्यापक नहीं है।**

जिज्ञासु – बात यह है कि परमत्मा है तो सर्वव्यापक परन्तु जैसे गाय के स्तनों में दूध देते हुए भी प्राप्त तभी होता है जब उसे दुहा जाता है, वैसे ही परमात्मा के शान्ति, आनन्द आदि गुणों का अनुभव तभी होता है जब आत्मा ज्ञान-मंथन करती है, जैसे तिलों में तेल व्यापक होते हुए भी हमें वह तभी प्राप्त होता है जब उसे कोल्हू में पीसा जाता है या जैसे गन्ने में रस व्यापक होते हुए भी प्राप्त तभी होता है जब उसे पेरा जाता है, अथवा मेंहदी

में लाली व्यापक होते हुए भी प्राप्त तभी होती है जब उसे घोटा या घिसा जाता है, वैसे ही परमात्मा के आनन्द, प्रेम आदि गुणों का अनुभव तभी होता है जब आत्मा तपस्या करती है, साधना करती है अथवा पुरुषार्थ करती है। अत: आत्मा को ज्ञान का मंथन, परमात्मा के गुणों का मनन-चिन्तन, ब्रह्मचर्य का पालन तथा आहार-व्यवहार आदि की पवित्रता के नियमों का पालन करना चाहिए तभी उसे सर्वव्यापक परमात्मा के गुणों का अनुभव होगा।

क्या परमात्मा व्यापक होते हुए भी भासित न हों – ऐसा हो सकता है?

ब्रह्माकुमारी – गाय के स्तनों में दूध है या नहीं, इसका काफ़ी कुछ पता तो दुहने से पहले भी चल जाता है। इस तरह गन्ने में रस या तिलों में तेल है या नहीं, यह भी उन्हें पेरने से पहले मालूम हो सकता है। मेंहदी की लाली भी रगड़े जाने से पहले ही अपनी झलक देती है। इसी प्रकार, यदि परमात्मा सर्वव्यापक है तो उसके लक्षण भी सर्वत्र भासित होने चाहियें, परन्तु वह प्रतीत नहीं होते। इसलिए परमात्मा सर्वव्यापक नहीं है।

दूसरी बात यह है कि ज्ञान के मंथन, ईश्वरीय गुणों के चिन्तन, आहार-व्यवहार की शुद्धि, ब्रह्मचर्य इत्यादि व्रतों के पालन से आत्मिक शान्ति और शक्ति का जो अनुभव होता है, वह परमात्मा की सर्वव्यापकता से नहीं होता, बल्कि इन नियमों के पालन से स्वयं आत्मा की स्थिति उच्च होने के फलस्वरूप प्राप्त होता है। इसी प्रकार मनन-चिन्तन के बारे में भी प्रसिद्ध है कि – "जैसा संकल्प किया जाए वैसा ही अनुभव होता है" अथवा "जैसी स्मृति हो वैसी स्थिति होती है।" उदाहरण के तौर पर कोई माता जब यह सोचती है कि उसका बच्चा, जोकि बहुत आज्ञाकारी और गुणवान है और जिसने अपने विद्यार्थी जीवन में भी अद्वितीय सफ़लता प्राप्ति की थी और

जिसने अब भी कुछ देश-सेवा का उच्च कार्य करके जन-जन के मन को हर्षाया है और भारत की सरकार के कुछ पदक (मेडल; Medals), पुरस्कार अथवा उपाधि पाकर उसने यश और ख्याति प्राप्ति की है, वह कल घर वापस मिलने के लिए आ रहा है तो इस बात के चिन्तन या संकल्प से माता को बहुत ही प्रसन्नता होती है और इससे उसका मन पुलकित हो उठता है।

इस दृष्टान्त से "जैसी स्मृति वैसी स्थिति" अथवा "जैसा संकल्प वैसा अनुभव" की उक्ति की सत्यता स्पष्ट है क्योंकि बच्चा अपनी माता में व्यापक नहीं है परन्तु माता उसके गुणों और शुभागमन को याद करके हर्षित हो जाती है। ऐसे और भी कई दृष्टान्त दिए जा सकते हैं, इससे स्पष्ट है कि ज्ञान के मन्थन से और ईश्वरीय गुणों के चिन्तन अथवा स्मरण से शान्ति का जो अनुभव होता है, वह मन में परमात्मा के व्यापक होने से नहीं होता बल्कि परमात्मा के गुण-चिन्तन के स्वरूप होता है। वास्तव में यदि परमात्मा सर्वव्यापक होता तब उसके गुणों के मनन-चिन्तन करने की आवश्यकता ही नहीं होनी चाहिए थी, क्योंकि तब तो उसके गुण हम में वैसे भी प्रतिभासित होते। परमात्मा के गुणों के मनन-चिन्तन तथा ज्ञान के मन्थन आदि की तो आवश्यकता से ही सिद्ध होता है कि परमात्मा सर्वव्यापक नहीं और ब्रह्मचर्य-व्रत तथा आहार-व्यवहार की शुद्धि से जो शान्ति मिलती है, वह भी आत्मा की उन्नति के फलस्वरूप है, क्योंकि इन व्रतों और नियमों के पालन से स्वयं मनुष्यात्मा में सद्गुण जागते हैं और विकार इससे दूर भागते हैं।

क्या सर्वव्यापकता के बारे में दियासलाई का दृष्टान्त ठीक है?

जिज्ञासु – तो ऐसा मान लीजिए कि जैसे दियासलाई में अग्नि तो पहले से ही व्यापक होती है परन्तु माचिस के ढकने की खुर्दरी तरफ पर रगड़ने से

इसमें अग्नि प्रकट होती है, उसी प्रकार परमात्मा भी है तो सर्वव्यापक ही परन्तु जब मनुष्यात्मा भी स्वयं को ज्ञान से 'रगड़ती' है तभी उसमें सर्वव्यापक परमात्मा के गुण प्रकट होते हैं।

ब्रह्माकुमारी – यह दृष्टान्त भी ठीक नहीं है। दियासलाई में पहले यदि इतनी गरमी थी तो दियासलाई पहले ही क्यों नहीं जली? विज्ञान (Science) को समझने से आप जानेंगे कि दियासलाई के सिर पर जो सल्फर (गंधक; sulphur), फास्फ़ोरस (Phosphorous) इत्यादि का बना हुआ मसाला लगा हुआ होता है, उसका यह स्वभाव है कि वह आंच मिलने पर शीघ्र ही जलने लगता है। विज्ञान से यह भी स्पष्ट है कि जब उस मसाले को माचिस की खुर्दरी सतह पर रगड़ा जाता है तब वह रगड़ गरमी (अग्नि; Heat) में परिवर्तित हो जाती है और उस रगड़ से पैदा हुई गरमी के कारण (न कि उस गरमी के कारण जो कि पहले से ही दियासलाई में थी) मसाला जलने लगता है और फिर उसकी आग तीली को भी जलाने लगती है। अत: यह कहना कि परमात्मा दियासलाई में अग्नि की तरह पहले ही से व्यापक है परन्तु ज्ञान-मन्थन से प्रकट होता है, यह ग़लत है। बल्कि इससे स्पष्ट है कि ज्ञान-मंथन ये जो 'अग्नि' पैदा होती है उससे सद्गुणों का मसाला जो स्वयं आत्मा में है, वह प्रदीप्त हो उठता है अर्थात ज्ञान की रगड़ से आत्मा रूपी तीली तथा उसका संस्कार रूपी मसाला ज्वलन्त हो उठता है। इसमें परमात्मा की सर्वव्यापकता या प्राकट्य का तो प्रश्न ही नहीं उठता। आखिर आत्मा में भी तो संस्कार-रूप में अथवा बीज रूप में कुछ सद्गुण हैं ही। उनका प्राकट्य तब होता है जब आत्मा ज्ञान रगड़ जाती है अथवा ईश्वरीय स्मृति रूपी अग्नि को पकड़ती है।

चुम्बक और सूई के दृष्टान्त पर विचार

जिज्ञासु – अच्छा तो ऐसे समझ लीजिए कि जैसे चुम्बक (मिकनातीस; Magnet) में लोहे की सूई को खींचने की शक्ति सर्व-व्यापक होती है, परन्तु जिस लोहे की सुई को जंग लगा हो वह उससे आकृष्ट नहीं होती, उसी प्रकार जो आत्मा विकारी हो वह भी परमात्मा के शान्ति, आनन्द आदि गुणों से प्रभावित नहीं होती, परन्तु परमात्मा है सर्वव्यापक ही।

ब्रह्माकुमारी – चुम्बक (मिकनातीस) तो लोहे की सुई से अलग ही होता है तभी तो वह सुई को आकृष्ट करता है। चुम्बक जंग वाले लोहे में व्यापक तो नहीं है वर्ना तो चुम्बक और सुई के बीच आकर्षण का प्रश्न ही न उठता। अत: चुम्बक और सुई के दृष्टान्त से तो यह सिद्ध होता है कि परमात्मा और आत्माएं अलग-अलग हैं और जो आत्मा विकारी हो वह परमात्मा के आकर्षण से प्रभावित नहीं होती।

माला और मणकों के दृष्टान्त पर विचार

जिज्ञासु – मेरा विचार है कि परमात्मा है तो सर्वव्यापक। जैसे माला के मणके अलग-अलग होते हैं परन्तु उनमें से गुज़रने वाला धागा सब में व्यापक होता है, उसी प्रकार आत्माएं भी अलग-अलग हैं और अनेक हैं, परन्तु परमात्मा उन सब में व्यापक हैं?

ब्रह्माकुमारी – माला के मणकों में तो जहाँ छेद होता है केवल वहीं धागा होता है, वह मणके के कण-कण में सर्व-व्यापक नहीं होता। परन्तु परमात्मा की सर्वव्यापकता के सिद्धान्त का तो यह अर्थ है कि परमात्मा कण-कण में है अर्थात् उससे खाली कोई स्थान नहीं है। अत: वह दृष्टान्त ही ठीक नहीं है।

पुनश्च, माला और धागा तो दोनों जड़ चीज़ हैं और धागे में कोई ऐसा गुण नहीं है जो कि मणकों पर प्रभाव डाल सके। परन्तु परमात्मा तो चेतन हैं

और उनमें शान्ति, आनन्द आदि ऐसे विशेष गुण हैं जिनका प्रभाव चेतन आत्मा पर पड़ सकता है। यदि चेतन परमात्मा सभी चेतन आत्माओं में होते तो आत्माओं पर उनके गुणों का प्रभाव होता जोकि आज नहीं है।

माला और मणके के दृष्टान्त से तो केवल यह सिद्ध होता है कि सभी ज्ञानवान् आत्माओं का परमात्मा के साथ सम्बन्ध होता है और उस कारण से वे परस्पर भी आध्यात्मिक दृष्टिकोण से सम्बन्धित होते हैं। इस दृष्टान्त से परमात्मा की सर्वव्यापकता सिद्ध नहीं होती।

यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे का दृष्टान्त

जिज्ञासु – कहावत प्रसिद्ध है कि जैसे आत्मा पिण्ड में है, वैसे परमात्मा ब्रह्माण्ड में है। इसके बारे में आपका क्या विचार है?

ब्रह्माकुमारी – आत्मा भी पिण्ड में सर्वव्यापक तो है नहीं, बल्कि आत्मा बिन्दु रूप अथवा अणु-रूप है। अत: इस दृष्टान्त से तो यह सिद्ध होता है कि जैसे अणु-रूप आत्मा पिण्ड में एक स्थान पर रहती है (कई कहते हैं हृदय में, कई कहते हैं कंठ में और कई अन्य स्थान में इसका वास मानते हैं और हम कहते हैं कि यह भृकुटि में रहती है जहाँ तिलक अथवा बिन्दी दी जाती है), वैसे ही परमात्मा भी इस सृष्टि में व्यापक नहीं है, बल्कि ब्रह्मलोक जिसे गीता में 'परमधाम' भी कहा गया है, के वासी हैं अर्थात् वह सर्वव्यापी नहीं हैं।

परमात्मा को सर्वव्यापक मानने की हठधर्मी का कारण

जिज्ञासु – आपकी बातें बहुत युक्ति-युक्त और ज़ोरदार लगती हैं। मैं काफ़ी-कुछ समझ गया हूँ, परन्तु फिर भी सर्वव्यापकता का सिद्धान्त मेरे मन से पूरी तरह से हट नहीं रहा। मालूम नहीं कि इसका कारण क्या है? अच्छा

अब आप यह बताइए कि यदि परमात्मा सर्वव्यापक नहीं है तो उसका स्वरूप क्या है?

ब्रह्माकुमारी – आप सर्वव्यापकता के सिद्धान्त को बहुत काल से कई जन्मों से सुनते और पढ़ते आये हैं। किसी भी विषय को बार-बार भोगने से मनुष्य के मन में उसको भोगने का एक बहुत पक्का संस्कार बन जाता है। ठीक इसी प्रकार, कानों द्वारा बार-बार और बहुत काल तक परमात्मा की सर्वव्यापकता का सिद्धान्त सुनने और आंखों द्वारा उसका अध्ययन करने तथा मन-बुद्धि द्वारा उसे मानने के परिणामस्वरूप अब आपके मन में यह सिद्धान्त एक पक्के संस्कार के रूप में बैठ गया है। अब सत्यता का श्रवण करने और उस पर मनन करने से पहला ग़लत संस्कार मिट जायेगा।

आप ज़रा सोचेंगे तो आप मानेंगे कि परमात्मा को सर्वव्यापक मानना तो गोया परमात्मा का अपमान करना है। परमात्मा को सर्वव्यापक मानने का अर्थ तो उसे सर्प, बिच्छू, मगरमच्छ, कुत्ते, सुअर, उल्लू इत्यादि सभी निकृष्ट योनियों में तथा विष्ठा, पत्थर आदि में भी मानना है। जिन पत्थरों को मनुष्य पांवों के नीचे रौंदकर चलता है, जिन धुली-कणों को मनुष्य झाड़कर बाहर निकाल फैंकता है, जिन बावले कुत्ते से मनुष्य जान बचाकर निकल जाना चाहता है, जिस विषैले सर्प को मनुष्य स्वप्न में भी देखना पसन्द नहीं करता, उसमें अपने परमप्रिय परमपिता को व्यापक मानना तो गोया मनुष्य की बुद्धि के दिवालियेपन की निशानी है। जो तीनों लोकों की सर्व आत्माओं में से सर्वमहान् हैं, उसे कच्छ, मच्छ आदि योनियों में व्यापक मानना तो गोया उसे ८४ लाख योनियों में जाने वाला मानना ओर उससे विमुख होना है! क्या कोई सर्प, सूअर आदि में परमात्मा मानकर उससे योग लगाने का यत्न करता है? यदि आप इस पर सोचेंगे तो आपकी बुद्धि पर से मिथ्या ज्ञान का पर्दा

हट जायेगा और आप परमात्मा को सर्वव्यापक मानने की जो भूल करते आये हैं, उसका बोझ आप के सिर से हटेगा।

अब आपके मन में परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को जानने की इच्छा का होना एक अच्छा चिह्न है, क्योंकि मनुष्य को चाहिए कि हठ को छोड़कर अपने कल्याण के लिए सत्य को धारण करे।

परमात्मा हम आत्माओं की तरह हैं तो एक ज्योति बिन्दु ही परन्तु वह ज्ञान, शान्ति, आनन्द, प्रेम, शक्ति आदि के विचार से हम सभी से परम अर्थात् सर्वश्रेष्ठ हैं। वह हमारे परमपिता हैं और दयालु, कृपालु, मार्ग-प्रदर्शक, सद्गतिदाता तथा पतित-पावन हैं परन्तु वह सर्वव्यापक नहीं हैं, बल्कि ब्रह्मलोक जिसे कि गीता में 'परमधाम' भी कहा गया है, के वासी हैं। भारत में 'शिवलिंग' नाम से जगह-जगह पर उनकी प्रतिमाएं स्थापित हैं और 'शिवरात्रि' के नाम से उसका अवतरणोत्सव मनाया जाता है। जब वह इस सृष्टि में अवतरित होते हैं तब फिर से सभी आत्माओं को पावन कर देते हैं। और उन्हें शान्ति तथा सुख अथवा मुक्ति और जीवन्मुक्ति देते हैं। आप इस रहस्य को विस्तारपूर्वक समझ और अनुभव कर सकते हैं क्योंकि अब **परमपिता परमात्मा शिव अवतरित होकर स्वयं ही अपना परिचय तथा अनुभव करा रहे हैं। हम भी इस परिचय तथा अनुभव से पहले केवल सुनी-सुनाई बातों के ही आधार पर परमात्मा को सर्वव्यापक मानते थे, परन्तु अब हम अनुभव तथा दिव्यदृष्टि के आधार पर जानते हैं कि वास्तव में परमात्मा सर्वव्यापक नहीं हैं।**

जिज्ञासु – जिन सिद्धातों और दृष्टान्तों को मैं पहले सत्य मानता चला आया था, वे सत्य हैं या असत्य, आज मुझे उन पर प्रकाश मिला है, एक नया दृष्टिकोण मिला और जीवन में पहली बार हृदय को सन्तोष और हर्ष देने

वाली एक विवेक-संगत विचारधारा अथवा अमृतधारा मिली है। मुझे यह समझकर लज्जा का अनुभव हो रहा है कि परमात्मा को सर्वव्यापक मानकर हम एक प्रकार से अपने परम प्यारे पिता को कुत्ते, विष्ठा, सर्प आदि में भी मानते आये हैं और इस प्रकार उनका तथा अपना (क्योंकि हम उनके पुत्र हैं) अपमान करते आये हैं! अब आज ईश्वरीय ज्ञान से मेरी आंख खुली है। मैं अब पारब्रह्म परमेश्वर शिव से बुद्धि की लगन लगाकर पावन बनूंगा और अपने जीवन में दिव्य-गुण लाऊंगा।

क्या परमात्मा का कोई रूप है?

वह सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और कर्म-फल दाता कैसे है?

जिज्ञासु – परमात्मा को तो सभी लोग 'निराकार' मानते हैं। भला आप उसका रूप क्यों मानते हैं?

ब्रह्माकुमारी – हम भी परमात्मा को 'निराकार' ही मानते हैं परन्तु हम 'निराकार' का वह अर्थ नहीं लेते जो कि आप लेते हैं। 'निराकार' एक विशेषण अथवा गुण है और विशेषण या गुण सदा सापेक्ष होते हैं अर्थात् वे किसी की तुलना में होते हैं। उदाहरण के तौर पर जब हम किसी कमरे के बारे में कहते हैं कि वह बड़ा है तो हम किसी अन्य छोटे कमरे की तुलना में ही ऐसा कहते हैं वर्ना यदि किसी बड़े कमरे से उसकी तुलना या अपेक्षा करें तो कहेंगे कि यह कमरा छोटा है। इस दृष्टान्त से सिद्ध है कि 'छोटा-बड़ा', 'अच्छा-बुरा' आदि-आदि सभी विशेषण किसी अन्य की अपेक्षा ही में प्रयोग किये जाते हैं। इसी प्रकार 'निराकार' शब्द भी 'साकार ' की भेंट में कहा जाता है क्योंकि आत्माएं शरीर धारण करती हैं और हम उन्हें शरीर-रूप में व्यक्त देखते हैं तथापि उनका अपना अलौकिक रूप तो ज्योतिबिन्दु अथवा ज्योति-अणु ही है। इसी प्रकार, ज्योतिस्वरूप परमात्मा को 'निराकार' कहा जाता है क्योंकि परमात्मा का कोई अपना शरीर नहीं है जैसा कि आत्माओं ने शरीर ले रखा है, तथापि परमात्मा का अपना अभौतिक ज्योति-बिन्दु रूप तो है ही। अत: परमात्मा को 'निराकार' कहने का एक भाव तो यह है कि वह अकाय है और उसके कोई अवयव, अंग या अंश नहीं हैं।

जैसे बहुत लोग 'निर्गुण' शब्द का यह अर्थ नहीं लेते कि परमात्मा के

कोई गुण नहीं है, बल्कि वह अर्थ लेते हैं कि उसमें प्रकृति के जैसे गुण नहीं है अथवा आत्माओं के जैसे अवगुण या दुर्गुण नहीं हैं, परन्तु ईश्वरीय गुण हैं, वैसे ही 'निराकार' का भी यह अर्थ नहीं लेना चाहिए कि परमात्मा का कोई रूप नहीं है, बल्कि यह अर्थ लेना चाहिए कि उसका कोई शारीरिक, प्रकृतिकृत, परिवर्तनीय, या व्यक्त रूप नहीं है जैसे कि हम संसार में अन्य पदार्थों को देखते हैं।

दूसरी बात यह है कि रेखा-गणित (Geometry) के दृष्टिकोण से देखा जाए तो बिन्दु अथवा अणु को तो 'निराकार' कहेंगे ही क्योंकि उसकी कोई मापी जा सकने वाली लम्बाई-चौड़ाई ही नहीं है तो उसका आकार हम कैसे मानेंगे? परमात्मा तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म है जिनको मापने का हमारे पास कोई माप (Scale), यन्त्र (Intrument) आदि साधन ही नहीं है। परन्तु जब हमें परमात्मा के अपने उस सूक्ष्म बिन्दु-रूप का बृहत् रूप में साक्षात्कार होता है तो हम देखते हैं कि वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं अमाप्य सत्ता अण्डाकार है। अत: ज्योति-बिन्दु परमात्मा को 'निराकार' कहना ही ठीक है और अण्डाकार या अंगुष्ठाकार कहना भी युक्ति-युक्त है।

विचार करने पर मानेंगे कि रूप के बिना तो कोई भी पदार्थ नहीं हो सकता। जिसका रूप न हो वह वस्तु ही नहीं होती।

जिज्ञासु – जैसे दु:ख-सुख और सर्दी-गर्मी का रूप नहीं होता। इसी प्रकार वायु का कोई रूप नहीं है। आप यह कैसे कह सकते हैं कि रूप के बिना संसार में कोई चीज़ नहीं होती?

ब्रह्माकुमारी – दु:ख और सुख कोई चीज़ें नहीं, ये कोई वस्तुएं नहीं हैं। ये तो आत्मा अथवा **मन के अवस्थान्तर** के नाम हैं। सत् वस्तु तो आत्मा ही है, सुख-दु:ख उसके **अनुभव** हैं अथवा उसकी **अवस्था विशेष के नाम** हैं,

ये आत्मा से अलग तो होते ही नहीं हैं क्योंकि ये कोई वस्तुएं नहीं हैं। आत्मा को तो अपना दिव्य ज्योति-बिन्दु रूप है। परन्तु, सुख-दु:ख उसकी अवस्था विशेष के नाम हैं। आत्मा का तो अपना दिव्य ज्योति बिन्दु रूप है। परन्तु उसकी अवस्थाओं, अनुभवों अथवा गुणों का रूप नहीं है। अत: सुख-दु:ख का उदाहरण परमात्मा पर ठीक चरितार्थ नहीं होता। आत्मा की तरह परमात्मा का भी अपना ज्योति-बिन्दु रूप है, परन्तु उसके आनन्द, शान्ति आदि गुणों का रूप नहीं है। सुख-दु:ख के उदाहरण से परमात्मा का अरूप सिद्ध नहीं किया जा सकता जैसे कि सुगन्धि आदि के उदाहरण से फूल को अरूप सिद्ध नहीं किया जा सकता।

सदी-गर्मी का उदाहरण दु:ख-सुख के उदाहरण से भिन्न है, क्योंकि गर्मी (Heat) का तो तरंगों अथवा प्रकम्पनों (Waves or vibrations) जैसा रूप होता है। वह रूप सूक्ष्म होने के कारण इन नेत्रों से नहीं देखा जा सकता, सो बात अलग है। यों तो अन्य बहुत-सी वस्तुएं भी इन नेत्रों से नहीं देखी जा सकतीं, परन्तु उनका न दिखाई देना यह सिद्ध नहीं करता कि उनका कोई रूप ही नहीं है। ठीक इसी प्रकार आवाज़ (Sound) या गरमी (Heat) आदि के प्रकम्पनों अथवा उनकी तरंगों का दिखाई न देना इस बात को तो प्रमाणित नहीं करता कि वे अरूप हैं। आज विज्ञान के युग में तो उनकी वेवलेंग्थ (Wave-length) भी मालूम होती है। रही सर्दी की बात, सर्दी तो गर्मी के अभाव का नाम है, सर्दी स्वयं तो कोई वस्तु ही नहीं है।

वर्तमान समय प्रकाश के बारे में भी दो मत (Theories) हैं — एक 'क्वांटम थिओरी (Quantum Theory)। दूसरी वेव थिओरी (Wave Theory) दोनों के अनुसार प्रकाश का, विद्युत का तथा अन्यान्य प्रकार की शक्तियों का या तो प्रकम्पनों (Waves) जैसा रूप है या अणुओं (Atoms) जैसा। विज्ञान कहता है — Light behaves like a Wave on Mondays, Wednesdays and Fridays, it behaves like Particles on Tuesdays, Thursdays and Saturdays and Sunday is a holiday.

वायु को भी रूप-रहित मानना अज्ञानता है। वायु का रूप तो है, परन्तु वह अस्थिर और परिवर्तनीय है और कहीं उसका घनत्व (Density) कम तथा कहीं अधिक है। यदि वायु का कोई रूप न हो तो उसकी (Density) का वा वज़न आदि का प्रश्न ही पैदा न हो।

वायु का कोई कठोर (rigid) स्थिर और सरल (regular) रूप नहीं है। परन्तु जिस समय वह जिस पात्र (Container) में है, उस समय उसका वही रूप है। उदाहरण के तौर पर यदि हम वायु को किसी फुटबाल के ब्लैडर में अथवा साईकिल की ट्यूब में भर देते हैं तो उस समय उसका वैसा ही रूप होता है। तो भी वह रूप देखा नहीं जा सकता, क्योंकि वायु बे-रंग है। यदि वायु में किसी मिल की चिमनी से निकलते हुए राख-कण या आंधी के कण या उड़ते हुए धूलि-कण मिल जायें तो उनके कारण वायु का रूप भी एक तरह से मालूम हो जाता है। अत: वायु के रूप का दिखाई न देना भी इस बात को प्रमाणित नहीं करता कि वायु का रूप नहीं है।

यदि किसी मनुष्य ने अपनी आंखों पर ऐसी ऐनक लगा रक्खी हो जिसमें कि शीशे (Lenses) न हों, बल्कि केवल फ्रेम (Frame) ही हो तो कई बार दर्शकों को यह मालूम नहीं होता कि ऐनक में शीशे हैं या नहीं। जिस मनुष्य ने एक बार ऐसा चश्मा देख लिया हो कि जिसमें शीशे नहीं हैं, वह फिर कभी शीशों वाली ऐनक में भी सन्देह करने लगता है कि पता नहीं इसमें भी शीशे हैं या नहीं। कारण यही होता है कि शीशे यदि बे-रंग हों और वह चमक कभी न रहे हों तो कभी-कभी दूर से वे दिखाई नहीं देते और ऐसा भी आभास होता है कि शायद शीशे हैं या नहीं। परन्तु उनका दिखाई न देना इस बात को प्रमाणित नहीं करता कि शीशे हैं ही नहीं, क्योंकि वास्तव में शीशे ऐनक में हो भी सकते हैं। इसी तरह, कई बार यदि आप दूर से किसी ऐसी खिड़की

को देखें कि जिसमें रंग-रहित शीशे लगे हुए हों। तो यदि वे शीशे दूर से चमकते हुए दिखाई न दें तो कभी-कभी मनुष्य सोचने लगता है कि शायद इन खिड़कियों में कभी शीखे फिट नहीं किये गये। परन्तु यदि वे शीशे रंगीन हों और इसी प्रकार यदि ऐनक के शीशे भी रंगीन हों तो फिर सन्देह नहीं होता। ठीक इसी तरह वायु का कोई रंगीन और ठोस रूप में न होने के कारण वह दिखाई नहीं देती और दिखाई न देने के कारण कई मनुष्य समझते हैं कि वायु का कोई रूप ही नहीं है। परन्तु वास्तव में ऐसा सोचता ग़लत है, क्योंकि रूप के बिना तो कोई भी चीज़ नहीं होती।

जिज्ञासु – आप ज्ञान-चर्चा में हमेशा यही कहा करते हैं कि परमात्मा एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म ज्योति-बिन्दु है और कि शिवलिंग उस ज्योति-बिन्दु परमात्मा ही का समरण-चिह्न जो कि बिन्दु जितना न बनाया जा सकने के कारण और पूजा की सुविधा के विचार से बिन्दु-रूप बड़े आकार वाला बनाया जाता है। आपकी यह बात सुनकर मेरे मन में प्राय: प्रश्न उठता है कि – ''क्या परमात्मा इतना छोटा है? इतने छोटे आकार वाला हाने पर वह क्या महान् कार्य कर सकता होगा!'' मेरे इस प्रश्न का क्या हल है?

क्या परमात्मा इतना सूक्ष्म हो सकता है?

ब्रह्माकुमारी – बात यह है कि आपने अपने मन में यह सोच रखा है कि छोटे आकार वाला कोई व्यक्ति या शक्ति-पुंज कोई महान् कार्य नहीं कर सकता। वास्तव में आपकी यह धारणा युक्ति-युक्त नहीं है। आप देखिए कि एक बड़ा बट-वृक्ष मीलों तक भूमि पर फैला रहता है। कलकत्ते में आज भी एक ऐसा वट-वृक्ष है। अब सोचने की बात है कि इतना बड़ा वृक्ष निकला तो एक छोटे अर्थात् बिन्दु जितने परिमाण (माप) वाले बीज से ही है। इसी प्रकार, आज विज्ञान के युग में यह भी तो मालूम हो चुका है कि एक अति सूक्ष्म

परमाणु में कितनी शक्ति होती है और वह कितना बड़ा कार्य कर सकती है? चेतन सत्ता – आत्मा पर विचार करने पर भी आप देखेंगे कि भले ही वह एक बिन्दु जितनी ही है, परन्तु उसमें विचार-शक्ति और कार्य-शक्ति इतनी है कि वह विश्व में विनाश के लिए एटम बम और मिसाइल (Missiles) भी बना सकती है, राजनैतिक क्षेत्र में देश-देशान्तरों में हलचल भी पैदा कर सकती है, सभी देशों को एक युद्ध की लपेट में भी ला सकती है और एक ऐसा धर्म भी स्थापित कर सकती है कि जिसे लाखों-करोड़ों लोग मानें। इन सभी दृष्टान्तों से सिद्ध है कि यह ज़रूरी नहीं है कि जिसमें अधिक शक्ति है उसका आकार भी बड़ा होगा। यह भी ज़रूरी नहीं है कि जिसका आकार बड़ा होगा वह कार्य बड़ा कार्य कर सकेगा। इसी तरह, परमात्मा के बारे में भी यह सोचना ग़लत है कि एक ज्योति-बिन्दु परमात्मा भला क्या कर सकता होगा? परमात्मा विज्ञान के बन्धन से, कर्मों के बन्धन से, प्रकृति के बन्धन से तथा माया के बन्धन से मुक्त होने के कारण अत्यन्त महान् कार्य करने में समर्थ हैं क्योंकि उसमें ज्ञान पवित्रता इत्यादि की उच्च शक्तियाँ हैं।

क्या सर्वशक्तिमान् होने के कारण परमात्मा को सर्वव्यापक मानना युक्ति-युक्त है?

जिज्ञासु – इन्हीं अनेकानेक शक्तियों के विचार से ही तो मैं कहता हूँ कि परमात्मा अवश्य ही सर्वव्यापी होंगे। 'आत्मा' शब्द का अर्थ ही है 'व्यापक'। शरीर में सीमित शक्ति वाला जो चेतन व्यापक है वह 'आत्मा' है और सर्व में अनन्त शक्ति वाला जो चेतन व्यापक है वह 'परमात्मा' है। शरीर रूपी पुरी में रहने वाली ओत्मा को ही 'पुरुष' कहा जाता है और यह सारा लोक अथवा सारा ब्रह्माण्ड जिसका शरीर है अर्थात् जो सारे संसार में व्यापक होकर रहता है, वह 'परम-पुरुष' है।

ब्रह्माकुमारी – वास्तव में 'आत्मा' शब्द का अर्थ है 'रहने वाला' आत्मा सारे शरीर में व्यापक नहीं है, बल्कि अणु-रूप अथवा ज्योति-बिन्दु है — यह बात प्राय: सभी मानते हैं। अत: वास्तव में 'आत्मा' शब्द का अर्थ शरीर में 'रहने वाली' चेतना और 'परमात्मा' शब्द का अर्थ है परमधाम में रहने वाला चेतन। जो शरीर-रूपी पुरी में रहता है वह 'परमपुरुष' अथवा 'पुरुषोत्तम' है। घर में रहने वाला घर में व्यापक नहीं होता। मोटर कार का ड्राइवर कार में व्यापक नहीं होता। संसार को प्रकाश देने वाला सूर्य सारे संसार में व्यापक नहीं है। इसी प्रकार, आत्मा शरीर में व्यापक नहीं है, न ही 'परमात्मा' इस सृष्टि में व्यापक है। बल्कि वह तो परलोक अथवा परमधाम अथवा ब्रह्मलोक का निवासी है।

आप जानते हैं कि 'महात्मा' शब्द का यह भाव नहीं है कि वह आत्मा बड़े शरीर में व्यापक है अथवा उस आत्मा का क्षेत्रफल (area) अथवा घनफल (volume) अधिक है। बल्कि 'महात्मा' उसे कहा जाता है जो गुणों और पवित्रता के दृष्टिकोण से महान् हो। इसी प्रकार 'परमात्मा' या 'पुरुषोत्तम' उसे कहा जाता है जो ज्ञान, पवित्रता, शक्ति, शान्ति, दिव्य-गुणों इत्यादि के विचार से परम, सर्वश्रेष्ठ अथवा उत्तम हो। 'परमात्मा' का अर्थ यह नहीं है कि वह सर्वव्यापक है बल्कि सभी आत्माओं की तुलना में परम पवित्र एवं परम ज्ञानवान आत्मा ही परमात्मा है।

आत्मा की शक्ति के सीमित होने का यह कारण नहीं है कि वह अणु जैसी छोटी है, अर्थात् उसका आकार सीमित है, बल्कि उसकी शक्ति इसलिए सीमित है कि वह माया के वशीभूत है, विकारी संस्कारों और कर्मों के बन्धन में है और जन्म-मरण के चक्कर में तथा स्वरूप-विस्मृति की अवस्था में है। जन्म-मरण में आते-आते और स्वरूप-विमृति होते-होते वह अति निर्बल हो

जाती है, मानो उसकी पवित्रता आदि की शक्तियों का अन्त होने लगता है। परन्तु, परमात्मा इन बन्धनों अथवा सीमाओं में नहीं आते, इसलिए उनकी शक्ति को 'असीम' और अनन्त कहा गया है। जन्म-मरण, माया, प्रकृति व कर्म का बन्धन न होने के कारण उनकी शक्ति का अन्त कभी नहीं होता। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उनका आकार ही अनन्त है अथवा वे सर्वव्यापक हैं।

सागर और बुदबुदे के दृष्टान्त पर विचार

जिज्ञासु – परन्तु परमात्मा को 'सागर' की और आत्मा को 'बुदबुदे' की जो उपमा दी जाती है, उससे यही सिद्ध होता है कि परमात्मा बे-अन्त है और आत्मा अणु-रूप है।

ब्रह्माकुमारी – यदि परमात्मा सर्वव्यापक हो तब तो परमात्मा को सागर की उपमा दी ही नहीं जा सकती क्योंकि सागर के ऊपर तो अकाश अर्थात् खाली स्थान होता है। सागर सर्वव्यापक तो होता ही नहीं है, आत्मा को भी आकार के दृष्टिकोण से 'बुदबुदे' से उपमा नहीं दी जा सकती क्योंकि बुदबुदे तो पैदा होते हैं और फिर क्षणभर में अपने अस्तित्व को सागर में खो बैठते हैं अर्थात उनका आकार तो बनता और मिटता रहता है, परन्तु आत्मा का तो जन्म होता नहीं और न किसी काल में उसका अपना अस्तित्व मिटता है। अत: स्पष्ट है कि 'परमात्मा' को 'सागर' की और आत्मा को 'बुदबुदे' की उपमा किसी अन्य दृष्टिकोण से दी गई है।

वास्तव में परमात्मा को 'सागर' से इस कारण उपमा दी गई है कि जैसे बुदबुदे की तुलना में सागर में बहुत जल आदि होता है उसी प्रकार परमात्मा आत्मा की तुलना में बहुत ही अधिक ज्ञान वाला है। आत्मा तो अल्पज्ञ है परन्तु परमात्मा ज्ञान का, शान्ति का, आनन्द का और प्रेम का सागर है। अत:

परमात्मा की उनके गुणों की महानता के कारण ही सागर से उपमा दी गई है न कि घनफल अथवा सर्व में व्यापकता के विचार से।

यदि परमात्मा सर्वव्यापक नहीं है, तो वह ज्ञान का सागर कैसे है?

जिज्ञासु – परन्तु यदि परमात्मा सर्वव्यापक नहीं तो वह 'ज्ञान का सागर' कैसे हो सकता है? उसका ज्ञान पूर्ण कैसे हो सकता है? उसमें सर्वज्ञता का गुण कैसे हे सकता है?

ब्रह्माकुमारी – यह कोई आवश्यक नहीं है कि जिसमें जितना अधिक ज्ञान हो वह उतना ही अधिक लम्बा-चौड़ा हो। हम देखते हैं कि दो मनुष्यात्माओं में से एक मनुष्यात्मा को अधिक ज्ञान है और दूसरे को कम। परन्तु हम जानते हैं कि यद्यपि दोनों के ज्ञान में अन्तर है तथापि दोनों आत्माओं के परिमाण (माप; size) में कोई अन्तर नहीं है अर्थात दोनों आत्माएं हैं बिन्दुरूप ही। इसी प्रकार, परमात्मा ज्ञान के विचार से सर्व-महान् हैं अर्थात् 'परम' हैं परन्तु रूप में है वह भी बिन्दु-रूप ही।

दूसरी बात यह है कि ज्ञानवान और ज्ञेय (अर्थात् जिसे जाना जाए) दोनों के परिमाण का एक जितना होना ज़रूरी नहीं है। उदाहरण के तौर पर किसी कमरे में क्या-क्या पड़ा है और कौन-कौन बैठा है — इस बात को जानने के लिए यह आवश्यक नहीं कि जानने वाला मनुष्य भी कमरे-जितना बड़ा हो अथवा वह कमरे में या उसमें रखी हुई वस्तुओं में या उसमें बैठे हुए मनुष्यों में व्यापक हो। बल्कि हम देखते हैं कि कमरे के एक कोने में बैठा हुआ एक व्यक्ति उस सारे कमरे को अपनी आंखों की छोटी-सी पुतलियों (आंखों) के द्वारा देख सकता है। आवश्यकता तो इस बात की है कि देखने वाले की दृष्टि ठीक समझ सकती हो और उसके नेत्रों तथा वस्तुओं के बीच में कोई बाधा,

रुकावट अथवा आवरणादि न हो। इससे स्पष्ट है कि परमात्मा, जो कि योगेश्वर हैं, दिव्य-दृष्टि सम्पन्न हैं, परम बुद्धिमान हैं, सम्पूर्ण निर्विकारी हैं और जिनकी दृष्टि में प्रकृति, काल, अज्ञान या कर्मादि बाधा नहीं डाल सकते, वह परमधाम-वासी होते हुए भी ज्ञान-दृष्टि अथवा दिव्य-दृष्टि द्वारा सब-कुछ जानते ही हैं। देखने की शक्ति की आवश्यकता है और यह शक्तियाँ तो परमात्मा में सदा हैं ही, इसलिए वह सब-कुछ जानता है।

वास्तव में देखने और जानने के लिए तो वस्तु में व्यापक न होने की आवश्यकता है। यदि देखने वाले और दृश्यमान वस्तु के बीच फासला न हो तो वस्तु को देखा नहीं जा सकता। अत: यदि परमात्मा सर्वव्यापक होते अर्थात् कोई भी कण उनसे खाली नहीं होता, तब तो वह वस्तुओं को जान ही न सकते।

हम आत्मा को अल्पज्ञ कहते हैं तो उसका यह अर्थ नहीं है कि वह अल्प अर्थात थोड़ी चीज़ों में व्यापक है बल्कि इसका यह अर्थ है कि उसका ज्ञान थोड़ा है, वह थोड़ी वस्तुओं को, थोड़े व्यक्तियों को और विश्व-इतिहास की थोड़ी-सी घटनाओं को जानती है। इसी प्रकार परमात्मा को 'सर्वज्ञ' कहने का यह अर्थ नहीं है कि वह सर्व में व्यापक है बल्कि इसका अर्थ यह है कि वह अजन्मा होने के कारण विश्व में सारे इतिहास को, दिव्य दृष्टि-वाला होने के कारण सभी आत्माओं को अथवा सभी धर्मों को जानता है। अत: उसको सभी वस्तुओं में व्यापक मानना भूल है।

आप देखते हैं कि एक पिता अपने पुत्रों में व्यापक न होते हुए भी उनकी जीवन-कहानी को जानता है, एक इन्जीनियर किसी मशीन में व्यापक न होते हुए भी उसके कल-पुर्जों को जानता है, भूगोल का एक विद्यार्थी अपने सारे देश में व्यापक न होने हुए भी देश के हालात को जानता है, किसी नाटक

का ज्ञाता उस नाटक के पात्रों (ऐक्टरों; actors) में व्यापक न होते हुए भी उनकी कर्म-कहानी अथवा अभिनय और भाव-भंगी से परिचित होता है। इसी प्रकार परमपिता परमात्मा भी मनुष्यात्माओं रूपी सन्तान की जन्म-जन्मान्तर की कहानी को अथवा तीनों लोकों के इतिहास और भौगोलिक स्थिति को अथवा सृष्टि-रूपी विराट नाटक के आदि, मध्य और अन्त को जानता है, परन्तु वह इन लोकों में या सभी आत्माओं में व्यापक नहीं है।

यदि परमात्मा सर्वव्यापक नहीं है तो फलदाता कैसे है?

जिज्ञासु – यदि परमात्मा सब में व्यापक नहीं है तो वह सभी के मन के अच्छे-बुरे विचारों या संकल्पों को भी नहीं जानता होगा और वह सभी को कर्मों का फल भी नहीं दे सकता होगा। तो जबकि परमात्मा सभी जीवात्माओं को उनके कर्मों का फल देता है, तो वह सर्वव्यापक भी अवश्य होगा।

ब्रह्माकुमारी – मनुष्य के मन के संकल्पों को तो टेलीपेथी (telepathy) जानने वाला एक मनुष्य भी जान लेता है, परन्तु वह उस मनुष्य के मन में व्यापक नहीं होता। किसी स्थान पर हो रहे भाषण को अथवा नाटक को टेलीविज़न के द्वारा एक-दूसरे देश वाले अपने निकट ही देख सकते हैं। किसी दूर के ग्रह अथवा नक्षत्र को दूरबीन द्वारा अपनी प्रयोगशाला में बैठा हुआ एक व्यक्ति देख सकता है।

आजकल तो ऐसे टेलीफ़ोन भी बन गये हैं कि आप जिस दूरस्थ व्यक्ति से बात कर रहे हों उसकी बात सुनने के साथ-साथ आप उस व्यक्ति को भी देख सकते हैं। हम जानते हैं कि आकाश में मीलों ऊंचे जाकर एक अन्तरिक्ष-यान भी वैज्ञानिक यन्त्रों द्वारा पृथ्वी पर की वस्तुओं के चित्र ले सकता है और यहाँ एक वैज्ञानिक अपने कन्ट्रोल-रूम के एक कोने में बैठा हुआ भी अन्तरिक्ष-यान को कन्ट्रोल कर सकता है, उसमें बैठे व्यक्ति से बातचीत कर

सकता है और उसके फ़ोटो भी ले सकता है। तो जबकि वैज्ञानिक यन्त्रों के साधन द्वारा दूर की चीज़ों को देख सकते, दूसरे दूशों में बैठे-व्यक्तियों से बात कर सकते और दूसरों के चित्र आदि ले सकते हैं तो परमपिता परमात्मा, जो कि सर्वोत्तम शक्ति से सम्पन्न हैं इन्हें वस्तुओं को देखने या व्यक्तियों को जानने के लिए उनमें व्यापक होने की भला क्या आवश्यकता है?

इसी प्रकार इस संसार के पुनरावृत्त (repeat) होने वाले इतिहास को भी परमपिता परमात्मा इतिहास की नियति (Pre-ordination or pre-determination) के कारण, अर्थात् इसके अनादि-निश्चित होने के कारण सदा जानते ही हैं। इस संसार की बनी-बनाई भावी को परमात्मा पूर्व-दर्शी अथवा त्रिकालदर्शी होने के कारण सदा जानते ही हैं। किसी स्थान या किसी मनुष्यात्मा में व्यापक होने से तो केवल वर्तमान ही को जाना जा सकता है, भविष्य को नहीं जाना जा सकता। भविष्य को पहले से तभी जाना जा सकता है जबकि भविष्य में होने वाली वार्ताएं अथवा घटनाएं पूर्व-निश्चित हों। अत: परमात्मा के त्रिकालदर्शी और विश्व-नाटक के अनादि-निश्चित एवं पुनरावृत्ति वाला होने के कारण ही परमात्मा सर्व-घटनाओं और सर्व-धर्मवंशी की आत्माओं के ज्ञाता अर्थात् सर्वज्ञाता हैं, न कि सर्वव्यापी होने के कारण।

यदि परमात्मा सर्वव्यापक नहीं तो सर्वशक्तिमान् कैसे हैं?

जिज्ञासु – परन्तु यदि परमात्मा सर्वव्यापक नहीं हैं तो वह सर्व-शक्तिमान् कैसे हैं और वह सृष्टि की रचना, पालना तथा विनाश कैसे करते हैं।

ब्रह्माकुमारी – मैं इस बात को पहले भी स्पष्ट कर चुकी हूँ कि यद्यपि परमात्मा सर्वशक्तिमान् हैं, परन्तु वह सर्वव्यापक नहीं हैं। आज सभी जानते हैं कि थोड़े से वैज्ञानिकों ने ऐसे-ऐसे बम अथवा अस्त्र-शस्त्र बना लिए हैं कि

थोड़े ही समय में उन द्वारा महाविनाश हो सकता है। परन्तु, ये थोड़ेसे वैज्ञानिक सारे संसार में व्यापक तो नहीं हैं। अत: मालूम रहे कि परमात्मा शिव महादेव-शंकर द्वारा वैज्ञानिकों को प्रेरकर ब्रह्मास्त्र, अग्नेयास्त्र, मूसल, ऐटम बम आदि बनवाते हैं जिनके प्रयोग से संसार का महाविनाश होता है। इसके अतिरिक्त, ''विनाश काले विपरीत बुद्धि'' होने के कारण भारत में आसुरी स्वभाव वाले लोग कलियुग के अन्त में परस्पर भाषा-भेद, धर्म-भेद, नीति-भेद, आदि-आदि के आधार पर घोर घमसान युद्ध करते हैं जिसके परिणाम-स्वरूप यहाँ भी महाविनाश होता है। सृष्टि के इस महाविनाश के कार्य में प्रकृति के तत्व भी सहायक होते हैं क्योंकि ऐटम और हाइड्रोजन बमों इत्यादि के विस्फोट से जो शक्ति विस्फुटित होती है उसी क्रिया-प्रतिक्रिया से प्रकृति में भी एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की श्रृंखला चल पड़ती है। अत: विनाश के कार्य के लिए परमपिता परमात्मा शिव को कोई सर्वव्यापक होने की आवश्यकता नहीं है।

परन्तु आज लोग यह समझ बैठे हैं कि परमात्मा जगत् का पूर्ण विनाश अथवा प्रलय करते हैं जिससे कि सारी प्रकृति परमाणु रूप हो जाती है। वास्तव में उनकी यह मान्यता ही ग़लत है। यह सृष्टि अनादि है। इसमें परिवर्तन तो होता है परन्तु इस सारे जगत् का कभी भी परमाणु रूप नहीं होता। बल्कि, कल्प के अन्त में जब आसुरी सम्प्रदाय की अत्यन्त वृद्धि हो जाती है इसका केवल महाविनाश ही होता है, न कि पूर्ण-विनाश। ये सत्यता गीता और महाभारत द्वारा भी समर्थित है।

अत: इसके परमाणु-रूप में परिवर्तन न होने से, इसको पुन: बनाने की भी आवश्यकता नहीं होती। बल्कि इसमें अधर्म का नाश करने की, सत् धर्म की पुन: स्थापना करने की तथा तमोप्रधानता को मिटाकर सतोप्रधानता की स्थापना करने की आवश्यकता होती है। यह कार्य परमपिता परमात्मा शिव

प्रजापिता ब्रह्मा के तन में दिव्य-प्रवेश करके तथा उनके मुखार्विन्द द्वारा ज्ञान ओर योग सिखाकर तथा उस ज्ञान और योग द्वारा मनुष्यात्माओं एवं जगत् में सतोगुण को जागृत करके सम्पन्न करते हैं। इस विधि से वे कलियुग का अन्त करके सतयुग लाते हैं अथवा पुरानी सृष्टि को 'नया' बनाते हैं। स्पष्ट है कि इस विधि सतयुगी सृष्टि की स्थापना करने तथा कलियुगी सृष्टि का महाविनाश कराने के कारण परमात्मा को सर्वव्यापक मानना भूल है।

परमात्मा को 'सर्व-शक्तिमान्' कहने का यह अर्थ नहीं है कि उसमें वह शक्ति है कि वह जगत् का नाश करके उसे परमाणु रूप में बदल देता है, बल्कि 'सर्वशक्तिमान्' का अर्थ यह है कि परमात्मा में 'ज्ञान की शक्ति', 'पवित्रता की शक्ति', 'आध्यात्मिकता की शक्ति' आदि वह दिव्य शक्तियाँ हैं जिनके द्वारा सतधर्म की, सतोप्रधानता की अथवा सतयुगी सृष्टि की स्थापना हो सकती है। इसके अतिरिक्त, परमात्मा में वह प्रेरणा शक्ति भी है जिसके द्वारा कि वह वैज्ञानिकों इत्यादि को प्रेरकर महाविनाश करा सकता है। ये शक्तियाँ अन्य किसी भी आत्मा या महात्मा में नहीं हैं। अत: अन्य सभी आत्माओं की तुलना में ही परमात्मा को 'सर्व-शक्तिमान्' कहा गया है। अन्य कोई भी आत्मा कलियुग का अन्त करके सतयुग को नहीं ला सकती। अन्य किसी में भी यह शक्ति नहीं है कि वह सारे संसार को बदल सके। अत: इसी कारण ही तो परमात्मा की महिमा है कि वह एक बिन्दु-जितने परिमाण वाला होते हुए भी इतना महान् कार्य करने में समर्थ हैं।

क्या परमात्मा इतने छोटे आकार वाला हो सकता है?

जिज्ञासु – मेरे विचार में तो परमात्मा को इतना छोटे आकार वाला मानना गोया उसकी महिमा कम करना है।

ब्रह्माकुमारी – वास्तव में देखा जाय तो परमात्मा को सर्वव्यापक मानने

से ही परमात्मा की महिमा कम होती है। यदि कोई सर्वव्यापक होकर अर्थात् इतने लम्बे-चौड़े परिमाण वाला होकर कोई बड़ा कार्य करता है तो इसमें उसकी बड़ाई ही क्या है? बड़ाई अथवा महिमा तो तभी होती है कि परमाण अथवा वजूद तो छोटा हो परन्तु कर्म अति महान् हों।

शास्त्र क्या कहते हैं?

जिज्ञासु – परन्तु सभी शास्त्र तो यही कहते हैं कि परमात्मा सर्व-व्यापक है।

ब्रह्माकुमारी – मनुष्यों की मत पर आधारित शास्त्रों में तो भले ही यह कहा गया है कि परमात्मा सर्व-व्यापक है, परन्तु शिरोमणि शास्त्र श्रीमद्भग-वद्गीता से तो स्पष्ट है कि परमात्मा सर्वव्यापक नहीं है। गीता शास्त्र तो स्वयं भगवान् ही के महावाक्यों का संग्रह है। अत: भगवान् अपने स्वरूप के विषय में स्वयं जो-कुछ कहते हैं, वहीं मान्य है।

गीता में क्या लिखा है?

जिज्ञासु – गीता से कैसे स्पष्ट होता है कि भगवान् सर्व-व्यापक नहीं हैं?

ब्रह्माकुमारी – गीता शास्त्र इसी सिद्धान्त पर आधारित है कि परमपिता परमात्मा अवतरित होते हैं। यदि परमात्मा सर्वव्यापी हों तब तो उनके अवतरित होने का प्रश्न ही नहीं उठता। अत: गीता के अवतारवाद के सिद्धान्त से स्पष्ट है कि परमात्मा सर्वव्यापक नहीं है। पुनश्च, गीता में यह भी महावाक्य हैं कि – "इस सृष्टि के अव्यक्त आकाश तत्व के पार जो अव्यक्त तत्व है, उससे भी परे जो अव्यक्त धाम है, जहाँ सूर्य और तारागण का प्रकाश नहीं पहुँचता, वही मेरा परमधाम है!" भगवान् ने यह भी कहा है कि "मैं दिव्य जन्म लेता हूँ, मैं धर्मग्लानि के समय आता हूँ। मैं इस तन में अवतरित हुआ परमात्मा हूँ, परन्तु मूढ़मति लोग इस साधारण तन में आये हुए मुझ परमात्मा

को नहीं पहचानते'' आदि-आदि।

जिज्ञासु – परन्तु गीता में कुछ ऐसे भी वाक्य हैं जिससे मालूम होता है कि परमात्मा सर्वव्यापक है।

ब्रह्माकुमारी – यह गीता शास्त्र भगवान् के ज्ञान देने के समय के बहुत बाद में लिखा गया है। उसमें भी कई वाक्य बाद में मनुष्यों ने मिलाये हैं।

जिज्ञासु – यह हम कैसे मानें कि ये वाक्य इस ग्रन्थ में बाद में मिलाये गये हैं?

ब्रह्माकुमारी – क्योंकि वे वाक्य गीता के मूल वाक्यों के, महावाक्यों के अथवा मुख्य अभिप्राय के विरुद्ध जाते हैं। 'भगवानुवाच' शब्द से तथा 'श्रीमद्भगवद्गीता नाम से तथा 'सूर्य-तारागणादि के प्रकाश से भी परे मेरा धाम है', ''मैं धर्म-ग्लानि के समय साकार रूप लेता हूँ, मेरा जन्म दिव्य है'' आदि-आदि जो महावाक्य हैं उन सभी के भाव के विरुद्ध जो वाक्य जाते हैं, उन्हें बाद में मिलाये गये वाक्य अथवा मनुष्य-मत पर आधारित वाक्य ही मानना होगा।

निर्णय करने के लिए विवेक का प्रयोग ज़रूरी

जिज्ञासु – हाँ यह तो मनुस्मृति में भी कहा गया है कि जब किसि विषय पर दो शास्त्रों के भिन्न विचार हों अथवा दो विद्वानों का मत-भेद हो तो मनुष्य को अपने विवेक से उसकी सत्यता और असत्यता को परखना चाहिए। इसके अतिरिक्त, मैंने देखा है कि आर्यसमाजी भाई भी गीता में कई वाक्यों को बार-बार आया देखकर तथा अन्य कई कारणों से गीता को प्रक्षिप्त मानते हैं। गीता को महाभारत का एक भाग माना जाता है, जिसे तो प्राय: सभी लोग प्रक्षिप्त मानते ही हैं। पुनश्च, बहुत लोग यह भी कहते हैं कि मूल-गीता के श्लोक कम थे। कुछ भी हो, मनुष्य को अपने विवेक से तो काम लेना ही चाहिए। अत:

सोचने पर मुझे आपके द्वारा बताया गया मन्तव्य बहुत-कुछ ठीक तो लगता है। मैं इस पर अधिक विचार करूँगा और यदि कुछ और पूछना हुआ तो फिर पूछूँगा।

परमात्मा सर्वत्र नहीं परन्तु सर्वत्र साक्षात्कार करा सकता है

ब्रह्माकुमारी – हाँ, इस विषय पर फिर चर्चा करेंगे। पहले आप आज की ज्ञान-चर्चा पर मनन कीजिए। वास्तव में ये अनुभव की ही बातें हैं। यह केवल तर्क-वितर्क की बात नहीं है। हममें से बहुत से ब्रह्मा-वत्सों को परमपिता परमात्मा के ज्योति-बिन्दु रूप का प्रायः साक्षात्कार होता ही रहता है। हमने ब्रह्मलोक का भी कई बार दिव्य-साक्षात्कार किया है। परमात्मा हम सभी का पिता है। क्या पिता अपने बच्चों में व्यापक होता है? अपने परमप्रिय परमात्मा को सर्वव्यापक मानना तो विपरीत बुद्धि का परिचय देना है। परन्तु आश्चर्य है कि आज लोग इसे बहुत बड़ी फ़िलॉसोफ़ी मानते हैं! जबकि मनुष्यात्मा ही मुक्ति प्राप्त करके ब्रह्मलोक को जाना चाहती है तो सदा-मुक्त परमात्मा भला इस जीवन-बद्ध संसार में क्यों व्यापक होंगे? जबकि ब्रह्मा, विष्णु और शंकर भी इस संसार से ऊपर, अपनी-अपनी देव-पुरियों में निवास करते हैं तो परमपिता परमात्मा शिव, जो कि इन तीनों के भी रचयिता हैं और जिन्हें याद करते समय सभी मनुष्य ऊपर की ओर देखते हैं – इस मनुष्यलोक में व्यापक क्यों होंगे? परमात्मा तो परे से भी परे हैं। हाँ, जैसे मजनू को सब जगह लैला दिखाई देती थी, जैसे मीरा को गिरधर गोपाल सब जगह दिखाई देते थे, वैसे ही भक्त लोग भी प्रेम-विभोर होकर कहते हैं – "हमें तो सभी जगह परमात्मा दिखाई देता है!" परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि परमात्मा सचमुच सर्वव्यापक हैं। नहीं, वह तो परम-प्रिय, परम-पवित्र परमात्मा है और परमधाम

का वासी है। परन्तु तन्मयता से याद किये जाने पर भक्तों की इच्छा पूरी करने के लिए वह कहीं भी उन्हें साक्षात्कार करा सकता है।

जिज्ञासु – हाँ, बात तो ठीक मालूम होती है। अच्छा!

❑

भगवान् के दर्शन

भक्त लोगों पर जब भीड़ पड़ती है तो वे प्रभु को पुकारते हैं। वे कहते हैं – ''हे प्रभु, आओ हमें इस स्थिति से बचाओ।'' यदि परमात्मा सर्वव्यापक हो तो वे उसे आने के लिए प्रार्थना करते हैं? वे क्यों कहते हैं – ''प्रभो! आपने देर लगा दी है, हम चिरकाल से आपको पुकार रहे हैं! हे नाथ, हे रक्षक भगवान्, अब और देर मत करो!'' इन सभी बातों से स्पष्ट होता है कि परमात्मा का कोई विशेष रूप और धाम है। तभी तो भक्त उसके दर्शनों के लिए 'काशी-करवट' खाने को भी तैयार हो जाते हैं।

क्या परमात्मा का काई रूप है या परमात्मा सर्वत्र है?

जिज्ञासु – आप परमात्मा को जो रूप मानते हैं, क्या वह भौतिक अर्थात् प्राकृतिक (Material) है जैसे कि कई लोग श्रीराम या श्रीकृष्ण का अथवा विष्णु या शंकर का रूप मानते हैं या जैसे कई मुसलमान लोग मानते हैं कि खुदा एक तख्त पर बैठा है और उस तख्त को फ़रिश्तों ने उठाया हुआ है? यदि आप परमात्मा का कोई स्थूल या सूक्ष्म भौतिक रूप मानते हैं तो कैसे और यदि आप परमात्मा का कोई भौतिक रूप नहीं मानते तो क्यों?

ब्रह्माकुमारी – हम अनुभव के आधार पर जानते हैं कि परमात्मा का कोई भौतिक रूप नहीं है और हमारा विवेक भी कहता है कि परमात्मा का कोई भौतिक (Material) रूप, अर्थात्, जैसे कि किसी मनुष्य के शरीर का होता है; वैसा तो हो ही नहीं सकता क्योंकि इसके कई कारण हैं। एक तो यह कि हम देखते हैं कि जो भौतिक रूप वाले पदार्थ हैं (जैसे कि घड़ा या शरीर है), वे सभी उत्पत्ति वाले अथवा जन्य होते हैं अर्थात् उन्हें प्राय: किसी ने बनाया होता है अथवा उनके माता-पिता होते हैं। परन्तु परमात्मा के बारे में हम यह नहीं कह सकते कि उसे किसी ने बनाया है अथवा उसके कोई माता-पिता हैं। क्योंकि यदि कोई बनाने वाला मान लिया जाय तब तो बनाने वाला ही परमात्मा हुआ, न कि वह जिसे बनाया गया और फिर, बनाने वाले के लिए भी यही प्रश्न उठेगा कि उसका रूप है या नहीं, और यदि उसका रूप है तो उसे किसने बनाया? अत: परमात्मा का न तो कोई भौतिक रूप है, ना ही उसका काई भौतिक रूप मानना योग्य है, क्योंकि वह अजन्मा और अनादि है।

दूसरी बात यह है कि जो भौतिक रूप वाले पदार्थ होते हैं वे बनाये जाने से पहले उसी रूप में नहीं होते और वे परिणामी भी होते हैं, अर्थात् अन्त में उनका वह रूप नष्ट हो जाता और वे अपने मूल तत्वों में मिल जाते हैं। इसका

अर्थ यह हुआ कि वे तीनों कालों में नहीं रहते। परन्तु परमात्मा को तो सत्, चित्, आनन्द-स्वरूप कहा जाता है और 'सत्' का अर्थ है – ''जो तीनों कालों में रहे।'' अत: सत् स्वरूप परमात्मा का कोई भी भौतिक रूप नहीं हो सकता, जैसे कि मनुष्य शरीर का रूप है अथवा जैसे कि श्रीकृष्ण या श्रीराम का था। क्योंकि रूप वाले पदार्थ अथवा शरीर, जन्म अथवा उत्पत्ति से पहले नहीं होते और नाश या मृत्यु के बाद भी उसी रूप में नहीं रहते, केवल मध्यकाल में रहते हैं।

तीसरी बात यह है कि भौतिक रूप वाले पदार्थ, जैसे कि मनुष्य का शरीर है, **अवयवी** होते हैं अर्थात् उनके अंग या अंश होते हैं और वे किन्हीं परमाणुओं के संयोग से बने होते हैं। और उनके अवयव, अंग अथवा परमाणु अलग भी हो जाते हैं जैसे कि किसी मनुष्य की भुजा कट जाने पर अलग हो जाती है अथवा मनुष्य के शरीर को जलाने से वह अपने मूल तत्वों के अणुओं में परिवर्तित हो जाती है। अत: भौतिक रूप वाले पदार्थ, भले ही उन्हें कोई बनाने वाला न भी हो, तो भी वे अखण्ड नहीं होते। परन्तु, परमात्मा के बारे में तो हम ऐसा नहीं कह सकते हैं कि परमात्मा के कोई खण्ड होते हैं या कि वह किन्हीं परमाणुओं के संयोग से बना है। इससे सिद्ध हुआ कि परमात्मा का कोई भौतिक रूप नहीं है, अथवा उसका कोई शारीरिक रूप भी नहीं है, बल्कि वह अशरीरी है, अखण्ड है, निरावयवी है और अविभाज्य है।

चौथी बात यह है कि जिनके भौतिक रूप हों, जैसे कि मनुष्य के शरीर का है, वे उत्पत्ति के बाद प्राय: वृद्धि को प्राप्त होते हैं, फिर उनकी कुछ काल तक स्थिति रहती है और फिर वे परिणाम को प्राप्त होते हैं, घटते हैं, क्षीण होते हैं और अन्त में नाश को प्राप्त होते हैं, अर्थात् उनका रूप विकारी या परिवर्तनशील होता है। परन्तु परमात्मा के बारे में हम ऐसा नहीं कह सकते

कि वह वृद्धि को प्राप्त होता है। अथवा नाश को प्राप्त होता है, अर्थात् हम यह नहीं कह सकते कि उसका रूप परिवर्तनशील, जरा-मरणाधीन या परिणामी है। अत: परमात्मा का कोई भौतिक रूप नहीं हो सकता। बल्कि वह अधिकारी और अमर है।

पाँचवी बात यह है कि -- स्थूल शारीरिक रूप जैसे कि श्रीराम या श्रीकृष्ण का था, आत्मा के संस्कारों तथा पूर्वकाल में किए हुए कर्मों के आधार पर मिलता है और फल-प्राप्ति के लिए मिलता है और उसका जन्म भी माता के गर्भ से होता है। परन्तु परमात्मा तो कर्मातीत है, अजन्मा है और सुख-दु:ख के फल से न्यारा है तथा सारे जगत् का माता-पिता है, उसका कोई माता-पिता नहीं है। अत: परमात्मा का अपना कोई शरीर नहीं है और शारीरिक रूप भी नहीं है। श्रीराम और श्रीकृष्ण तो महात्मा थे, जिन्हें सभी दिव्य-गुणों से सम्पन्न होने के कारण 'देवता' कहा जा सकता है; उन्हें 'परमात्मा' नहीं कहा जा सकता।

छठी बात यह है कि परमात्मा का किसी दिव्य शरीर के जैसा रूप भी नहीं है जैसा कि विष्णु देवता या शंकर देवता का है या जैसा कि मुसलमान लोग सातवें आसमान में तख्त पर विराजमान खुदा को मानते हैं। परमात्मा तो देवों का भी देव 'एक विशेष आत्मा' ही है जिसका काई सूक्ष्म शरीर भी नहीं है, बल्कि वह तो उससे भी न्यारा है क्योंकि शरीर वाले तो 'रचना' श्रेणी के हैं, जबकि परमात्मा 'रचना' नहीं है; वह तो 'रचयिता' है।

सातवीं बात यह है कि भौतिक रूप में 'चित्' और 'आनन्द' नहीं हो सकता। अत: परमात्मा को कोई भौतिक रूप नहीं है। इसी प्रकार अन्य भी कई युक्तियों से बात सिद्ध की जा सकती है कि परमात्मा का कोई भौतिक रूप नहीं है। परन्तु विशेष तौर पर तो यह अनुभव की बात है।

जिज्ञासु – आप की यह बात तो बहुत ही युक्ति-युक्त है कि परमात्मा का कोई भौतिक (Material) रूप या शरीर-जैसा रूप नहीं है। आपने इसको स्पष्ट करने के लिए जो युक्तियाँ दी हैं, उन सभी युक्तियों को हम भी जानते और मानते हैं और चिरकाल से उनकी चर्चा होती आई है। परन्तु अब मेरा एक प्रश्न यह है कि यदि आप भौतिक रूप नहीं मानते, कोई शरीर के रूप जैसा रूप भी नहीं मानते तो आख़िर आप कैसा और कौन-सा रूप मानते हैं? दिव्य (Spiritual) अथवा भौतिक रूप को देखा तो जा नहीं सकता, इसलिए उसका प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। प्रत्यक्ष प्रमाण न होने के कारण उसका कोई अनुमान प्रमाण भी नहीं हो सकता। उसका कोई शब्द प्रमाण भी नहीं है अर्थात् भगवान् के भी कोई यह वाक्य अथवा शब्द नहीं है कि उनका कोई मूर्त रूप है। किसी निष्पक्ष महात्मा के भी यह वचन नहीं हैं कि भगवान् का कोई अभौतिक या दिव्य (Spiritual) रूप है। इसके अतिरिक्त, परमात्मा के उस रूप की कोई 'उपमा' भी नहीं हो सकती, क्योंकि परमात्मा को तो 'अनुपम' कहा गया है। तो जबकि दिव्य-रूप को न देखा जा सकता है, न उसका कोई प्रमाण है और इसलिए न ही उसे जाना जा सकता है, तो आप भला परमात्मा का कौन-सा और कैसा रूप जानते हैं और किस आधार पर मानते हैं?

ब्रह्माकुमारी – आपकी यह मान्यत ग़लत है कि अभौतिक अथवा दिव्य-रूप हो ही नहीं सकता और कि उसका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता और कि उसका कोई प्रमाण या उसकी कोई उपमा नहीं है। वास्तव में परमात्मा को अभौतिक (Non-material) अथवा दिव्य (Spiritial) रूप अवश्य है। उस रूप का दिव्य-प्रकाश, दिव्य-साक्षात्कार अथवा दिव्य-दर्शन होता है। सांसारिक अथवा भौतिक पदार्थ तो प्राय: चर्म-चक्षुओं से देखे जा सकते हैं परन्तु परमात्मा का साक्षात्कार तो दिव्य-चक्षु से होता है। इस बात को प्राचीन काल में भी बहुत

लोगों ने माना है और वर्तमान समय में हमारा भी अनुभव है। अत: भगवान् के दिव्य-रूप के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। भगवान् के अपने भी महावाक्य हैं और गीता महाशा ा में यह शब्द हैं कि ''मैं अव्यक्त मूर्त हूँ, अर्थात् मेरा रूप तो है परन्तु अव्यक्त है।'' भगवान् के उस रूप की उपमा भी दीप-शिखा से अथवा बीज से की जाती है अथवा भगवान् को अंगुष्ठाकार या अण्डकार भी कहा जाता है। भगवान् को 'अनुपम' तो केवल इसलिए कहा जाता है कि उसके जैसा ज्ञान का सागर, शान्ति का सागर, आनन्द का सागर, प्रेम का सागर, सर्वशक्तिमान् और अजन्मा अन्य कोई नहीं है। भगवान् के उस रूप का साक्षात्कार और अनुभव अनेकानेक बहन-भाइयों ने किया है और इनका परिचय स्वयं परमप्रिय परमपिता परमात्म ने दिया है। अत: हम दिव्य प्रत्यक्ष (साक्षात्कार), गीता के भगवान् के महावाक्य और विवेक के आधार पर कह सकते हैं कि परमात्मा की मूर्त है, परन्तु वह अव्यक्त मूर्त है, प्रकाश-मूर्त है, सूक्ष्मातिसूक्ष्म है, चेतन-मूर्त है और विलक्षण-मूर्त है।

आत्मा का भी तो अणु-रूप माना जाता है। तो क्या वह अभौतिक रूप नहीं है? तो जबकि आत्मा का अभौतिक रूप हो सकता है तो परमात्मा का क्यों नहीं हो सकता?

जिज्ञासु – परन्तु प्रश्न यह है कि जो अभौतिक रूप आप मानते हैं वह परमाणु-रूप है या परमाणुओं के संयोग से बना हुआ कोई बड़ा रूप है? यदि वह किन्हीं परमाणुओं से बना रूप है तो वह अविनाशी और अखण्ड नहीं होगा और संयोग से कभी किसी द्वारा बनाया गया होगा। यदि वह परमाणु-रूप है तो वह अनन्त नहीं होगा, परन्तु परमात्मा तो अनन्त है। अत: परमात्मा का रूप तो नहीं हो सकता।

ब्रह्माकुमारी – जैसे आत्मा का अभौतिक अणुरूप अथवा बिन्दु-रूप है

वैसे ही परमात्मा का भी अव्यक्त ज्योति-बिन्दु रूप ही है। वह अविनाशी और अखण्ड है अर्थात् उसका अन्त नहीं होता। परमात्मा देश के विचार से अनन्त अर्थात् सर्वव्यापक नहीं है, बल्कि काल की दृष्टि से अनन्त है अर्थात् नित्य है। ऋषियों ने उसे इसलिए भी 'अनन्त' या 'बे-अन्त' कहा कि वे उसे यथावत् जान नहीं सके।

आज भी जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे के स्वभाव को अथवा उसकी मन्सा को पूरी तरह जान या समझ नहीं सकता तो वह कहता है – ''भाई हम तो तुम्हारा अन्त नहीं पा सके। तुम्हारी गत-मत तुम्हीं जानते हो, हम तो उसे समझ नहीं सके।'' स्पष्ट है कि किसी को न समझ सकने के कारण भी उसे 'बे-अन्त' अथवा 'अनन्त' कहा जाता है, यद्यपि उसका रूप तो होता ही है। इस विषय में वेदवादी लोग स्वयं कहते हैं कि वेद में एक मन्त्र है, जिसका यह अर्थ है कि – ''परमात्मा के हाथ और पाँव नहीं है, परन्तु वह गमन करता है अर्थात् जाता है और पदार्थों को ग्रहण भी करता है, वह चक्षु-रहित है परन्तु फिर भी वह देखता है, उसके कान नहीं हैं, तो भी वह सुनता और वह सारे संसार का ज्ञाता है। परन्तु उसको यथावत् जानने वाला कोई नहीं।'' स्पष्ट है कि न जान सकने के कारण ऋषियों ने उसे 'बे-अन्त', 'अनन्त', 'नेऽति-नेऽति' आदि शब्दों से उसका वर्णन किया है, परन्तु उसका रूप तो अवश्य है। उसका रूप न होता तो यह क्यों कहा जाता कि उसके पांव नहीं है, परन्तु वह चलता है? यदि परमात्मा सर्वव्यापी होता तो चलने का प्रश्न ही न उठता? 'गमन', 'अगमन' आदि शब्द तो उस ही के लिये प्रयोग किए जा सकते हैं जिसका कोई रूप हो। परमात्मा का वह जो दिव्य-रूप है, वह स्वयं ही अवतरित होकर बताता है और स्वयं ही दिव्य-चक्षु का वरदान देकर दर्शाता भी है। वह अपना अन्त अर्थात् यथावत् ज्ञान स्वयं आकर

ही देता है।

पहले भी लोगों ने कभी उसके उस दिव्य-रूप का साक्षात्कार किया है तभी शिवलिंग के रूप में लोग उसकी पार्थिव मूर्ति बनाकर उसकी पूजा करते हैं। आप देखते हैं कि शिवलिंग के न पांव होते हैं, न हाथ हैं, न आंखें है और न कान। अन्य देवताओं की मूर्ति सावयव अर्थात् इन्द्रियों के सामूहिक रूप वाली अथवा शारीरिक रूप वाली होती है, परन्तु परमात्मा की मूर्ति हाथ-पांव के बिना, अण्डकार अथवा अंगुष्ठ-रूप ही बनाई जाती है। 'शिव' नाम परमात्मा ही का है, क्योंकि 'शिव' का अर्थ है — 'कल्याणकारी' और परमात्मा ही कल्याणकारी अर्थात् मुक्तिदाता और जीवन्मुक्ति के दाता तथा पतित-पावन हैं। 'लिंग' का अर्थ 'चिह्न'। अत: यह शिवलिंग उस कल्याणकारी, अमरनाथ परमात्मा ही का स्मरण-चिह्न है और 'शिवरात्रि' उस ही के अवतरण-दिन की याद में उत्सव है।

जिज्ञासु – परन्तु हम तो परमात्मा के बारे में यही मानते हैं कि उसकी कोई मूर्ति अथवा प्रतिमा नहीं हो सकती क्योंकि ऋषियों ने यही कहा है?

ब्रह्माकुमारी – परमात्मा की कोई सही अथवा हूबहू वैसी मूर्ति तो हो भी नहीं सकती, क्योंकि परमात्मा सूक्ष्मातिसूक्ष्म है और अणुरूप अथवा बिन्दु-रूप है। बिन्दु की लम्बाई-चौड़ाई या माप-तोल तो कोई हो ही नहीं सकता, अत: उसकी कोई यथावत् मूर्ति भी नहीं बना सकते। हाँ, उसके रूप से मिलती-जुलती मूर्ति यह शिवलिंग है जो कि लोगों ने पूजा के लिए बनाई है। योगी को तो उसकी पार्थिव मूर्ति न बनाकर उसके अव्यक्त-मूर्ति, बिन्दु, चेतन तथा गुणी रूप पर ही मन को एकाग्र करना चाहिए, क्योंकि उसकी पार्थिव मूर्ति हूबहू वैसी नहीं बनाई जा सकती और उसमें वह गुण भी नहीं होते।

पुनश्च, जिस समय मनुष्यात्मा ध्यानावस्था में परमात्मा के दिव्य रूप का

साक्षात्कार कर रही होती है, उस समय तो वह शरीर से न्यारी अवस्था में तथा लगन में एक-टक मग्न होती है और उसकी मूर्ति बनाती ही नहीं है और जब वह ध्यानावस्था से हटकर पुन: व्यवहार में बरतती है तो उस समय वह रूप यथावत् (as it is) उसके सामने नहीं होता। इसलिए भी उसकी हूबहू वैसी मूर्ति नहीं बन सकती जैसेकि वह स्वयं है। इसलिए केवल उसके रूप से मिलती-जुलती और उसके अणु-रूप की अपेक्षा में बहुत बड़ी, अव्यक्त रूप की अपेक्षा व्यक्त, दिव्य रूप की अपेक्षा में पार्थिव अथवा अलौकिक 'अमाप्य' और अतुल रूप की अपेक्षा में माप और तौल वाली (प्रतिमा) मूर्ति बनाई जा सकती है। इसी कारण से कहा गया है कि परमात्मा की कोई प्रतिमा नहीं है अर्थात् हूबहू उसके रूप-जैसी मूर्ति या प्रतिमा नहीं है और इसका दूसरा अर्थ यह है कि परमात्मा का अव्यक्त रूप तो है, परन्तु उसका कोई माप-तौल नहीं है, क्योंकि वह अभौतिक और अणु-रूप है।

परमात्मा सर्वव्यापक नहीं है वह परमपिता हैं

[भिखारी परमात्मा के नाम पर भीख मांगता है, चरवाहा पुशुओं को 'अरे गधे' आदि शब्द कहकर हांकता है, हत्यारा शत्रुता, घृणा एवं क्रोध मन में लेकर हत्या करता है, रोगी परमात्मा से स्वास्थ्य की याचना करता है, क्या इन सभी परिस्थितियों को देखकर आप कहेंगे कि परमात्मा सर्व–व्यापक है, अर्थात भिखारी और दानी में, पशु और चरवाहे में, रोगी और स्वास्थ्य दाता में, कुत्ते और बिल्ले में, जड़ और जंगल में, सब में है? ऐसा मानना तो गोया परमात्मा को 'पिता' न मानने और उनकी निन्दा करने के तुल्य है।]

क्या आत्मा ही परमात्मा है?

जिज्ञासु – [जिज्ञासु ब्रह्माकुमारी बहन से मिलने पर कहता है] कहो बहन, कैसी हैं? मंगल-कुशल तो है?

ब्रह्माकुमारी – ठीक! कल्याणकारी परमपिता परमात्मा शिव से योग-युक्त होने से अर्थात् उनकी स्मृति में स्थित होने से मनुष्य ठीक तो होता ही है। सुनाइये, आप कैसे हैं?

जिज्ञासु – अच्छा, तो आप परमात्मा को 'पिता' मानकर, अर्थात् उसे स्वयं से भिन्न मानकर उसकी स्मृति में रहते हैं? खैर, जिसको जितना ज्ञान है, उसके अनुसार ही वह पुरुषार्थ करता है। परन्तु वास्तव में अद्वैत वेदान्त की दृष्टि से तो आत्मा ही परमात्मा है। आत्मा से भिन्न दूसरा तो कुछ है ही नहीं, फिर याद किसको करें? मनुष्य आत्मा को परमात्मा से भिन्न तभी तक मानता है अथवा उसकी स्मृति का अभ्यास तभी तक करता है जब तक कि उसे यह पूर्ण ज्ञान नहीं हुआ कि तत्व तो एक ही है अथवा कि यह जो कुछ अलग-अलग और भिन्न-भिन्न दिखाई दे रहा है, यह भी वास्तव में सब एक ही है। जब उसे ऐसे तत्व का ज्ञान हो जाता है तब वह स्वयं को परमात्मा से भिन्न नहीं मानता। अत: परमात्मा को 'पिता' मानना अथवा उसे स्वयं से भिन्न मानना तो वास्तव में एक प्रकार से अज्ञानता अथवा मिथ्या ज्ञान है।

ब्रह्माकुमारी – जबकि प्रत्यक्ष रूप से सब अलग-अलग और भिन्न-भिन्न अनुभव हो रहा है और विवेक से इस बात का समर्थन होता है कि अनेक देहों में अनेक आत्माएं ही अपने-अपने गुण-कर्म स्वभाव के अनुसार कर्म कर रही हैं, और, इसलिए अलग-अलग ही कर्म-फल भी भोग रही हैं तो आप कैसे कहते हैं कि यह सब एक ही है? हर-एक का जन्म-मरण और फल-

भोग अलग-अलग स्थान पर, अलग-अलग समय पर अथवा भिन्न-भिन्न रीति से भिन्न-भिन्न होता है, तब कैसे माना जाय कि सब आत्माएं एक-दूसरे से अभिन्न है? एक आत्मा को 'महात्मा' और दूसरी को 'पापात्मा' कहा जाता है, क्योंकि उनके गुणों में तथा आचरण में भिन्नता है, तब सब एक आत्मा कैसे हुए? और जबकि सामान्य आत्माओं की तुलना में उच्च आत्मा को 'महात्मा' कहा जाता है तो सर्वोच्च आत्मा को 'परमात्मा' कहने में क्या आपत्ति है? और, यदि सर्वश्रेष्ठ आत्मा को परमात्मा कहना युक्ति-युक्ति है तब तो आत्माओं का एक न होना सिद्ध ही है क्योंकि आत्माओं को अनेक मानने पर ही उन्हें 'महात्मा', 'श्रेष्ठ आत्मा' आदि-आदि कहा जा सकता है।

आपके और हमारे बीच जो बात हो रही है, स्वयं इससे भी सिद्ध है कि **मन्तव्य** अलग हैं, **कर्तव्य** अलग हैं, **स्वभाव** अलग हैं और एक-दूसरे का मंगल-कुशल भी पूछने की रीति है। क्योंकि एक के मंगल-कुशल से सबका मंगल-कुशल नहीं होता, बल्कि हर-एक की अवस्था अलग-अलग है। अत: हर युक्ति से यही सिद्ध होता है कि यह सृष्टि एक विराट खेल है, इसमें अनेक आत्माएं हैं और उनके भिन्न-भिन्न कर्तव्य हैं और परमात्मा शब्द उस विशेष आत्मा का वाचक है जिसका कभी अमंगल अकुशल नहीं होता, बल्कि वह दूसरों का भी कलयाण करने के कारण **'शिव'** कहलाता है और इसलिए 'परमपिता' तथा 'परमशिक्षक' एवं 'परम सद्गुरु' भी कहलाता है। इसलिए लोग उसका गायन करते हुए कहते हैं – 'त्वमेव माताश्च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव। त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्व मम् देव देव।'' अन्य लोग उसे 'परम-पुरुष', 'पुरुषोत्तम', 'परमात्मन्' आदि-आदि नाम देते हैं और ''ओम् नम: शिवाय'' आदि वन्दना-सूचक शब्दों से भी संकेत मिलता है कि वे परमात्मा को ही कल्याणकारी, स्मरणीय, योग का आधार अथवा

अपना लक्ष्य या ध्येय मानते हैं। तब आप भला आत्मा को परमात्मा से अभिन्न कैसे मानते हैं?

जिज्ञासु – वास्तव में यह जितनी बातें आपने की हैं, यह सब भ्रम अथवा अविद्या पर आधारित हैं। ये तत्व-ज्ञान के विपरीत हैं। तत्व-ज्ञान की दृष्टि से तो सब एक ही हैं, दूसरा कोई है ही नहीं। मैं तो यह बात कुछ दृष्टान्तों द्वारा स्पष्ट करता हूँ। आप चीनी के खिलौनों का ही दृष्टान्त लीजिए। चीनी को सांचों में ढालकर उससे हाथी, घोड़ा, राजा, महल आदि-आदि बनाया जाता है। अब यद्यपि इन सभी के रूप भिन्न-भिन्न हैं तथापि इन सबका तत्व तो एक चीनी ही है। चीनी के सिवाय तो ये कुछ भी 'नहीं', इनका कोई आधार और अस्तित्व नहीं है। इन खिलौनों में जो पारस्परिक भेद है, वह केवल नाम-रूप ही का भेद है, इसका तत्व तो एक ही है। जो मनुष्य इसके नाम-रूप की भिन्नता के कारण इन्हें भिन्न-भिन्न मानता है, वह ग़लती करता है। तत्व-ज्ञानी इनके तत्व को जानता है और उसी दृष्टि से इनको एक ही मानता है। आप यह भी मानेंग कि आख़िर एक दिन इन सभी के नाम-रूप तो मिट जाते हैं और तत्व ही रह जाता है, अर्थात् जिस चीनी से ये खिलौने बने हैं केवल वही रह जाती है। वहां एक सत्ता है जोकि इन सभी खिलौनों में है और वही इन सभी का आधार है। इसी प्रकार, ये जो अनेक नाम-रूप वाले जीव-प्राणी हमें दिखते हैं, ये भी वास्तव में तत्व की दृष्टि से एक हैं। इनमें भी केवल नाम रूप ही का भेद है और वह भेद भी अल्प-स्थाई अथवा विनाशी है। इनमें अविनाशी सत्ता तो एक आत्मा ही है।

इसी प्रकार कपड़े के एक ही थान में से कोट, कमीज़, पायजामा, कच्छा इत्यादि अनेक व ा बनाये जा सकते हैं यद्यपि इनके भी नाम रूपादि भिन्न हैं और इनका प्रयोग भी भिन्न-भिन्न है तथापि इनका मूल तत्व तो एक 'कपड़ा'

ही है। ऐसे अन्य भी बहुत-से दृष्टान्त देकर यह सिद्ध किया जा सकता है कि आत्मा ही एक-मात्र अविनाशी तत्व है और उस एक आत्मा से भिन्न दूसरा कुछ है ही नहीं।

परमात्मा भी हमसे कोई अलग सत्ता नहीं है और उपास्य-उपासक, पूज्य-पूजक या साध्य-साधक आदि का भेद केवल काल्पिनक है अथवा वह अज्ञानता ही के कारण है।

ब्रह्माकुमारी – आपने चीनी के खिलौने का जो दृष्टान्त दिया है, वास्तव में तो यह दृष्टान्त भी ठीक नहीं है, क्योंकि चीनी के खिलौनों में हम देखते हैं कि उनमें केवल नाम-रूप ही का भेद है, उनमें गुणों का भेद नहीं है। परन्तु संसार में जो जीव-प्राणी हैं, उनमें केवल नाम-रूप का भेद नहीं है, बल्कि उनमें गुण-कर्म-स्वभाव, कर्म-भोग मन्तव्य आदि-आदि का भी थोड़ा-बहुत भेद अवश्य है। कोट, कमीज़ पायजामे या कच्छे में भी गुणों का भेद नहीं है। उनके गुण भी कपड़े के गुणों के समान ही हैं और आपस में भी एक समान हैं परन्तु हम संसार में देखते हैं कि एक ही माता-पिता के दो पुत्रों में भी समान गुण नहीं है, न ही उनका भाग्य एक समान है। संसार में सबका स्थान और मान भी एक नहीं है। कोई महान् है कोई साधारण है। कोई श्रेष्ठाचारी भी हो सकता है, अन्य कोई भ्रष्टाचारी भी। कोई बड़ा है तो कोई छोटा। सब एक ही एक मानने से तो मर्यादा ही नष्ट हो जाती है तथा अनुशासन और नियंत्रण, व्यवस्था और व्यवहार भी नहीं हो सकता। तत्व एक है ही नहीं तो एक मानें कैसे?

जिज्ञासु – छोटे-बड़े का भेद केवल उपाधि का भेद है। यह कोई वास्तविक भेद नहीं है। उदाहरण के तौर पर मिट्टी से किसी कुम्हार ने घड़ा, लोटा, लुटिया, प्याली आदि बना लिया। अब इनमें से घड़ा बड़ा है, प्याली छोटी है। परन्तु यह बड़े-छोटे का भेद क्षणिक है तथा यह केवल उपाधि का

भेद है। तत्व तो दोनों का एक 'मिट्टी' है। तत्व की दृष्टि से उनमें भिन्नता नहीं है। जब दोनों का नाम-रूप मिट जाता है और उपाधि भी नष्ट हो जाती है, तब दोनों की मिट्टी में आप कुछ भी भिन्नता नहीं कर सकते और यह नहीं कह सकते कि अमुक मिट्टी घड़े की है और अमुक मिट्टी प्याली की है।

मिट्टी तो एक ही है। इसी प्रकार, आत्मा अथवा तत्व एक ही है, भिन्नता केवल नाम-रूप उपाधि के कारण है जो कि अविनाशी नहीं है। अत: सत् पदार्थ अथवा अविनाशी पदार्थ तो एक 'आत्मा' ही है। आत्माएं अनेक नहीं हैं, न ही अनेक सिद्ध हो सकती हैं। हाँ, संसार में व्यवहार की दृष्टि से तो भेद है परन्तु, तत्व-ज्ञान की दृष्टि से कोई भी भेद नहीं है।

ब्रह्माकुमारी – ग़लत बात को सिद्ध करने के लिए जितने भी दृष्टान्त दिये जाते हैं, उनमें कोई-न-कोई त्रुटि अवश्य होती है। इसी प्रकार, अब आपने जो दृष्टान्त दिया है वह भी ग़लत है। आपने घड़े, लोटे, प्याली आदि का जो दृष्टान्त दिया है, उस दृष्टान्त में सभी चीज़ें मिट्टी की बनी हुई हैं जोकि केवल सत् वस्तु है, परन्तु वह सत्-चित् नहीं है, अर्थात वह चैतन्य स्वरूप नहीं है। अत: लोटे और प्याली में केवल सत् ही के छोटे और बड़े रूप का भेद है, उनमें चेतना का भेद नहीं है, संस्कारों का भेद नहीं, अनुभव का भेद नहीं है, विचारों तथा आचारों का भेद नहीं है, अर्थात् कोई मौलिक भेद नहीं है। उन्हीं वस्तुओं का आपने फिर भी दृष्टान्त दिया है जिनमें केवल **रूप** ही के छोटे-बड़े होने का भेद है। पहले भी आपने चीनी के खिलौनों का जो दृष्टान्त दिया था उनमें रूपों का नाम भिन्न-भिन्न था अर्थात् किसी का नाम—'हाथी', किसी का 'घोड़ा' और किसी का 'राजा' था और अब रूपों की, लम्बाई-चौड़ाई-ऊंचाई भिन्न-भिन्न है। दृष्टान्त फिर भी रूप ही की भिन्नता के बारे में है परन्तु उनके मौलिक स्वभावों की भिन्नता के बारे में नहीं है। हम जो

आत्माओं की अनेकता की बात करते हैं, वह उनके मौलिक स्वभाव की भिन्नता के आधार पर कहते हैं, न कि उनके नामों या रूपों की भिन्नता के आधार पर। अत: आपके दृष्टान्त में एक तो यह त्रुटि है कि यह भी नाम-रूप ही के बारे में है जबकि हम संसार में जीवों के बारे में देखते हैं कि उनके नाम-रूपों की भिन्नता तो दैहिक भिन्नता है परन्तु जीवात्माओं में पारस्परिक भिन्नता तो उनकी चेतना में अर्थात् उनकी वृत्ति में, उनके मूलभूत मन्तव्यों में भिन्नता के कारण है।

आत्माओं में नाम-रूप की भिन्नता तो है ही नहीं, बल्कि उन सभी का नाम 'आत्मा' और रूप 'ज्योति-बिन्दु' अथवा 'ज्योति-कण' है। भिन्नता तो उनके स्वभाव तथा संस्कारों में है, जिसके परिणामस्वरूप उनके शरीर भी भिन्न-भिन्न रूपों वाले मिलते हैं। वह संस्कारों-विचारों की भिन्नता ही मौलिक भिन्नता है। आपके दृष्टान्त में दूसरी त्रुटि यह है कि जिसमें घड़े, लोटे, प्याली आदि का वर्णन है, वे सत् पदार्थ नहीं हैं, बल्कि सत् पदार्थ केवल मिट्टी अथवा प्रकृति ही है जिसमें वे टूटने के बाद मिल जाते हैं और एक-रूपता को प्राप्त हो जाते हैं। परन्तु आत्माएं तो सत् हैं, वे घड़े, लोटे, प्याली आदि की तरह नष्ट नहीं होतीं और उनके गुण-कर्म-स्वभाव, प्रभाव, फल-भोग आदि में अन्तर है। वह भी अविनाशी है, क्योंकि आत्माओं का अस्तित्व अनादि और अविनाशी है। जिस घड़े, लोटे, प्याली आदि का दृष्टान्त आपने दिया है यदि उन सभी का अपना-अपना अस्तित्व अनादि और अविनाशी होता और यदि उनके गुणों में भी भेद होता, तब उनमें नाम-रूप का भेद या छोटेपन, बड़ेपन का भेद या उनके अस्तित्व की भिन्नता भी अनादि और अविनाशी नहीं है और उनका भेद भी केवल नाम रूप का तथा रूप ही के छोटे-बड़े होने का भेद है और उनमें कोई मौलिक गुण-भेद या अविनाशी भेद नहीं है, इसलिए

आप कहते हैं कि वह तत्व की दृष्टि से एक हैं। आप किन्हीं ऐसी वस्तुओं का दृष्टान्त दीजिए जो अनादि और अविनाशी हों और उनमें कोई मौलिक स्वभाव-भेद हो और उनसे आपका सिद्धान्त भी पुष्ट होता हो। ऐसा दृष्टान्त तो आपको हज़ार प्रयत्न करने पर भी नहीं मिलेगा। अत: हमारा कहना तो यह है कि आत्माएं, जो कि अनादि और अविनाशी हैं, उनमें गुण-कर्म-स्वभाव आदि का भेद भी अनादि और अविनाशी है, इसलिए वे अनेक हैं ओर भिन्न-भिन्न हैं ओर उनमें से जो सर्व-श्रेष्ठ है, उसी को 'परमात्मा' कहा जाता है।

जिज्ञासु – मैं कहता हूँ कि वास्तव में आत्माएं अनेक नहीं हैं, न ही उनमें कोई भिन्नता है। अनेक नामों-रूपों वाले जीवों की इस सृष्टि में केवल भ्रम के कारण ही हमें अनेकता प्रतीत होती है। सत्यता की दृष्टि से देखा जाए तो यह अनेकता है नहीं। इस बात को हम एक दृष्टान्त से स्पष्ट करते हैं। मान लीजिए कि एक मनुष्य बाहर सड़क पर जा रहा है। सायंकाल का समय है। सड़क पर थोड़ा अन्धेरा है। उस मनुष्य ने रास्ते में एक रस्सी देखी और वह उससे सांप समझकर डर गया। अब रस्सी वास्तव में तो मनुष्य को काटने वाली चीज़ या ज़हरीली चीज़ नहीं है और उससे डरने या चौंकने की कोई आवश्यकता भी नहीं है। परन्तु 'भ्रान्ति' के कारण मनुष्य उसे सांप समझ बैठा है और मनुष्य की भ्रान्ति का कारण होता है — 'अन्धेरा'। उस अन्धेरे तथा भ्रान्ति के कारण मनुष्य को रस्सी में सांप प्रतीत होता है अर्थात् जो वस्तु वास्तव में नहीं है, वह दिखती है। इसी प्रकार, मनुष्य को अविद्या रूपी अन्धकार के कारण ही भ्रान्ति है और इस भ्रान्ति के कारण ही जीवात्माओं में अनेकता या भिन्नता देखता है जोकि वास्तव में है नहीं परन्तु केवल दिखती ही है।

यही बात सीपी और चांदी के दृष्टान्त से भी सिद्ध की जा सकती है। अन्धकार में मनुष्य, मार्ग में पड़ी हुई किसी सीपी को चांदी समझकर उठाने

लग जाता है और मन में सोचता है कि मैं इससे ज़ेवर बनवाऊंगा। परन्तु वह चांदी प्रतीत-मात्र ही है। वास्तव में तो वह सीपी ही है और उससे ज़ेवर नहीं बन सकते। इसी प्रकार, संसार में जो अनेक-रूपता और भिन्नता दिखाई देती है, यह भी भ्रान्ति और अविद्या ही के कारण है, यह वास्तविक नहीं है। जब मनुष्य को ज्ञान अथवा विद्या रूपी प्रकाश प्राप्त हो जाता है तब उसकी भ्रान्ति मिट जाती है और उसे वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो जाने पर उसे अनेक-रूपता और भिन्नता प्रतीत नहीं होती है। इसलिए मैं कह रहा था कि आत्मा एक ही है। यह जो कुछ भी व्यक्त या अव्यक्त है या नाना रूपों वाला भासता है, यह सब ब्रह्म ही है। ये नाना नाम-रूप जो दिखाई देते हैं वे प्रतीत-मात्र हैं, वास्तविक नहीं है। वह आत्मा अथवा ब्रह्म अनन्त, ज्ञान और आनन्द स्वरूप है। उस ब्रह्म की माया-शक्ति के कारण ही ये अलग-अलग जीव प्रतीत हो रहे हैं। जब जीवात्मा को तत्व-ज्ञान होता है तो वह माया के प्रभाव से मुक्त होता है। तब उसे ब्रह्म के सिवाय कुछ भी नहीं भासता, कुछ भी भिन्न नहीं प्रतीत होता।

ब्रह्माकुमारी – ये जो आपने दृष्टान्त दिये हैं, ये तो आपके सिद्धान्त के विपरीत जाते हैं। आप ज़रा इन पर निष्पक्ष भाव से विचार करेंगे तो देखेंगे कि आपके दृष्टान्तों के पांचों पहलुओं से आत्मा की अनेकता और पारस्परिक भिन्नता सिद्ध होती है।

दृष्टान्त पर विचार करने से आप मानेंगे कि भ्रम तभी सम्भव होता है जब दो चीज़ें हों और उनमें कुछ समानता हो। यदि एक ही चीज़ हो तो भ्रम हो ही नहीं सकता। उदाहरण के तौर पर यदि संसार में केवल रस्सी ही हो और 'सर्प' नाम का कोई जीव होता ही न हो तो कभी किसी भी मनुष्य को रस्सी में सर्प की प्रतीति या भ्रम नहीं हो सकता अथवा यदि संसार में सर्प तो होता

हो परन्तु रस्सी नाम की कोई चीज़ कभी होती ही न हो तो भी मनुष्य को सांप में रस्सी का भ्रम नहीं हो सकता। भ्रम तभी हो सकता है जबकि संसार में सर्प भी कहाँ होते हों और रस्सी भी होती हो। अत: यदि एक ब्रह्म के अतिरिक्त संसार में दूसरा कुछ हो ही न, जैसे कि आप मानते हैं, तो भ्रम या भ्रान्ति हो ही नहीं सकती। भ्रान्ति तो तभी हो सकती है जब कम से कम दो वस्तुएं हों, जैसे कि दृष्टान्त में सर्प भी है और रस्सी भी है और दोनों अलग-अलग तथा भिन्न-भिन्न वस्तुएं हैं। अत: जबकि आप केवल एक ब्रह्म-तत्व ही को मानते हैं और दूसरा कुछ मानते ही नहीं, तब तो आपका दृष्टान्त ही नहीं बनता, क्योंकि मैं पहले भी स्पष्ट कर चुकी हूँ कि एक तत्व से तो भ्रान्ति हो ही नहीं सकती।

दूसरी बात यह है कि भ्रम के लिए न केवल रस्सी और सांप दोनों का होना ज़रूरी है, बल्कि यह भी ज़रूरी है कि जिस मनुष्य को भ्रम होता है उसने पहले दोनों चीज़ें देखी हुई हों। उदाहरण के तौर पर यदि किसी मनुष्य ने संसार में रस्सी तो कभी दखी है परन्तु सांप को कभी भी नहीं देखा तो उसे रस्सी में सांप का भ्रम कभी भी नहीं हो सकता। अत: यदि किसी को यह भ्रम हो रहा है कि आत्माएं अनेक हैं, तो इस भ्रम से भी यही सिद्ध होता है कि उसने पहले भी अनेक आत्माएं देखीं, जानीं या अनुभव ही न की होतीं तो उसे दूसरी का भ्रम भी नहीं हो सकता। पुनश्च, चूँकि जीवात्मा अनादि है, इससे स्पष्ट है कि अनादि काल से आत्माओं की अनेकता अनुभव करती आ रही है। इसका अर्थ यह हुआ कि अनादि काल से ही आत्माएं अनेक तथा भिन्न-भिन्न हैं। अत: इससे भी आपके दृष्टान्त का खण्डन होता है।

तीसरे, मैं आपसे यह पूछती हूँ कि भ्रम, किसे होता है — 'ब्रह्म' को या 'जीवात्मा' को? आपके अपने मन्तव्य के अनुसार ब्रह्म को तो भ्रम होना नहीं

चाहिए, क्योंकि आपने स्वयं ही कहा है कि ब्रह्म अनन्त ज्ञान और आनन्द स्वरूप है। अत: जिसमें अनन्त ज्ञान है, उसको तो भ्रम होना नहीं चाहिए, क्योंकि जहाँ प्रकाश होता है, वहाँ तो अन्धेरा नहीं टिक सकता। जिसमें अनन्त ज्ञान है, वहाँ माया, अविद्या अथवा भ्रम टिक नहीं सकना चाहिए। यदि आप कहें कि ब्रह्म को तो भ्रम नहीं होता परन्तु जीवात्माओं को भ्रम होता है तो यह कथन भी आपके अपने मन्तव्य के विरुद्ध है। क्योंकि आप तो कहते हैं कि जीवात्मा भी ब्रह्म से भिन्न नहीं है और कि एक ब्रह्म के सिवाय दूसरा कुछ है नहीं। अत: आपका दृष्टान्त फिर भी नहीं टिकता, क्योंकि ब्रह्म को तो भ्रम होना नहीं चाहिए क्योंकि आपके कहने के अनुसार वह अनन्त ज्ञानवान है और ब्रह्म के सिवाय दूसरा कोई है ही नहीं कि जिसको भ्रम हो।

चौथे, यदि आपके कहने के अनुसार यह मान लिया जाय कि भ्रम जीवात्माओं को होता है तो भी यह मान्यता आपके सिद्धान्त के इसलिए भी विपरीत है, क्योंकि आप तो आत्माएं अलग-अलग मानते ही नहीं हैं, बल्कि आप तो कहते हैं कि — 'जब ब्रह्म को भ्रम होता है तभी माया के अधीन हुआ वह ब्रह्म स्वयं को अलग-अलग आत्माएं मानता है।' अत: एक ओर यह कहना है कि आत्माओं को भ्रम होता है और दूसरी ओर यह कहना है कि आत्माएं अनेक भासती ही तब हैं जब ब्रह्म को भ्रम होता है — यह तो दोषपूर्ण और एक-दूसरे पर आधारित तर्क है और फिर भी दोनों स्थितियों में अनेक आत्माएं तो सिद्ध होती ही हैं। अत: सत्य सिद्धान्त यह हुआ कि आत्माएं सदा अनेक हैं।

पांचवें, हम आपसे पूछती हैं कि जिसे आप 'अनन्त ज्ञान' एवं आनन्द 'स्वरूप' ब्रह्म मानते हैं वह समस्त ही माया द्वारा प्रभावित तथा आवेष्ठित है या उसके कुछ खण्ड ही माया के प्रभाव में हैं? यदि आप कहें कि समस्त

ब्रह्म माया से आवेष्ठित है अर्थात् उससे प्रभावित है, तब तो आपके कथन से सिद्ध हुआ कि सारे ब्रह्म को माया के कारण भ्रम है और तब तो उसे 'अनन्त-ज्ञान' एवं 'आनन्द-स्वरूप' मानना ही ग़लत है। यदि आप कहें कि उसका कुछ खण्ड ही माया से प्रभावित है और वही स्वयं को भ्रान्ति अथवा अविद्या के कारण अलग-अलग जीवात्माएं मान रहा है, तब तो ब्रह्म अनन्त और अखण्ड न हुआ। परन्तु आप तो मानते हैं कि वह अनन्त और अखण्ड है और उसका कुछ खण्ड तो ज्ञानवान हुआ और कुछ माया या अविद्या से प्रभवित हुआ और ऐसी स्थिति में भ्रम का कोई स्थाई लक्षण अथवा उसकी कोई स्थाई परिभाषा (Definition) भी न होगी। पुनश्च, ब्रह्म का जो खण्ड माया के प्रभाव में है, यदि वह खण्ड डोलता अर्थात् चलता रहता है तो जहाँ-जहाँ वह होता होगा वहाँ-वहाँ का ब्रह्म भ्रम वाला होता होगा और जहाँ-जहाँ वह नहीं होता होगा वहाँ-वहाँ ब्रह्म अविद्या रहित या माया-रहित होता होगा। इस प्रकार कौन-से देश में मायातीत ब्रह्म है और कौन-से देश में माया से प्रभावित ब्रह्म है, यह कभी भी कुछ भी निश्चित न होगा।

पुनश्च, आपका तो ज्ञान लेना तथा सारा पुरुषार्थ करना भी व्यर्थ रहेगा, क्योंकि आज यदि आप ज्ञान प्राप्त करके भ्रम-मुक्त हो जाते हैं और स्वयं को 'ब्रह्म' मानते तथा उसका अनुभव करते हैं तो शरीर-मुक्त होने के बाद आप स्वयं जो ब्रह्म हैं, आप फिर भी तो तुरन्त माया से आवेष्ठित अथवा प्रभावित हो सकते हैं। अत: यह क्या गारन्टी रही कि आज 'ब्रह्मलीन' होने के बाद कल ही आप पुन: भ्रम के प्रभाव में नहीं आयेंगे जबकि आप पहले भी माया द्वारा आवेष्ठित हो गये थे। इस प्रकार आप देखेंगे कि न आपका सिद्धान्त टिकता है, न ही दृष्टान्त और न ही पुरुषार्थ।

इसके अतिरिक्त, मैं पूछती हूँ कि आप 'माया' किसे कहते हैं? आप

माया से कब प्रभावित हुए? अथवा दूसरे शब्दों में प्रश्न यह है कि ब्रह्म माया से क्यों प्रभावित हो गया है अथवा ब्रह्म माया या भ्रम द्वारा जीवों को जन्म-मरण के चक्कर में क्यों डालता है।

जिज्ञासु – 'माया' ब्रह्म की एक शक्ति है जिसके द्वारा सब मोहित अथवा भ्रमित होते हैं और जिसके प्रभाव से यह अनेकता प्रतीत होती है। हम माया के बारे में अधिक कुछ नहीं कह सकते, बल्कि यह अनिर्वचनीय है। जीवात्माएं आदि काल से ही उसके प्रभाव में हैं। हम नहीं कह सकते कि वे कब इसके प्रभाव में आईं और ब्रह्म ने तो एक से अनेक होने के लिए और यह खेल अथवा लीला रचने के लिए यह सब जादूगरी की है। माया 'ब्रह्म' से अलग नहीं है, बल्कि ब्रह्म ही मायावी है अर्थात् माया-शक्ति वाला है।

ब्रह्माकुमारी – आपने अभी जो कुछ कहा है, उस पर किंचित विचार कीजिए। यदि जीवात्माएं अनादि काल से माया के प्रभाव में हैं और अविद्या में हैं तब तो वे अनन्त काल तक रहेंगी भी क्योंकि जो अनादि है, वह अनन्त काल तक रहता भी है, तब तो अविद्या से छूटने का पुरुषार्थ करना ही व्यर्थ है। पुनश्च, ब्रह्म यदि मनुष्य को माया अथवा भ्रम में डालने वाला है तो फिर जीवात्मा को माया से छुड़ाने वाला कौन है? तब तो वह भी ब्रह्म से अधिक प्रिय और अच्छा हुआ? परन्तु आप तो ब्रह्म से भिन्न अन्य किसी को मानते ही नहीं हैं। इसका भाव तो यह हुआ कि ब्रह्म ही चंचल है और दूसरों को भ्रम में डालकर तमाशा करता है, चाहे वे भ्रम के कारण दु:खी भी हों! पुनश्च, आप कहते हैं कि 'माया' के बारे में भी अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार तो यह ज्ञान ही वास्तव में मिथ्या है, भ्रम पर आधारित है और अधूरा है और जिसे आप 'ब्रह्म' या 'परमात्मा' यां 'आत्मा' कहते हैं, उसकी निन्दा करने वाला है और मनुष्य से श्रेष्ठ पुरुषार्थ छुड़ाने वाला है।

जिज्ञासु – अच्छा तो आप ही बताइये कि 'माया' क्या है, 'ब्रह्म' क्या है, 'जीवात्मा' किसे कहते हैं और 'परमात्मा' कौन है?

ब्रह्माकुमारी – वास्तव में 'माया' स्वरूप-विस्मृति का या काम, क्रोध, लोभ, मोह, और अहंकार का नाम है। यह ईश्वर की शक्ति नहीं है, बल्कि अनादि एवं अविनाशी जीवात्मा अपनी अल्पज्ञता के कारण तथा शरीर और विषय पदार्थों के संग के कारण स्वरूप-विस्मृत होकर स्वयं को देह मानने लगता है और देह-अभिमान के वशीभूत होकर विषय-विकारों में बरतने लगता है, उसकी वह आत्म-विस्मृति अथवा उसका देह-अभिमान ही माया है। इससे ही मनुष्य को दु:ख होता है। परमात्मा की शक्ति तो माया के विपरीत और विरुद्ध है, परमात्मा मायावी नहीं है। वह तो ज्ञान का सागर, शक्ति का सागर, आनन्द का सागर तथा प्रेम का सागर एवं सर्वशक्तिमान् है और मनुष्यात्माओं को मार्ग-दर्शना देकर माया-मुक्त कराने वाला होने के कारण 'शिव' कहलाता है।

वह शिव ज्याति-स्वरूप, मायातीत, ज्योति-बिन्दु, अनादि और अविनाशी है और ब्रह्मलोक का ही वासी है। वहाँ से वह धर्मग्लानि के समय अवतरित होकर मनुष्यों को वास्तविक ईश्वरीय ज्ञान और सहज राजयोग सिखाता है। 'ब्रह्म-तत्व' आत्माओं से भी भिन्न है और परमपिता परमात्मा शिव से भी भिन्न है। वह तो ब्रह्मालेक में व्यापक एक अखण्ड ज्योति-तत्व है जिसमें आत्माएं निर्वाण अवस्था में रहती हैं और परमपिता परमात्मा शिव भी वास करते हैं। अत: ब्रह्म और परमात्मा में धाम और धामी का तथा जड़ और चेतन का भेद है। आत्मा एक नहीं है, बल्कि आत्माएं अनादि काल से अनेक हैं और भिन्न-भिन्न गुण, कर्म और स्वभाव वाली हैं। इन सभी बातों को ठीक रीति से जानकर हम परमाधाम अथवा ब्रह्मालेक के निवासी परमपिता

परमात्मा शिव से योग-युक्त होते हैं अर्थात् उनकी स्मृति में स्थित होने का अभ्यास करते हैं और उनसे हम आध्यात्मिक शक्ति तथा शान्ति लेते हैं और माया पर विजय प्राप्त करते हैं। परन्तु आपने तो सब 'एक ही एक' कर दिया है और परमात्मा को भी 'मायावी' कहा है, यह बड़ी भूल है। परमात्मा को आत्मा से अलग ही नहीं मानते तो वास्तविक योग का अभ्यास कैसे करेंगे और योगाभ्यास के बिना तो पूर्व-जन्मों के विकर्म भी दग्ध नहीं हो सकते। आप तो जीवात्माओं को अलग-अलग नहीं मानते, किन्तु हम कहते हैं कि जीवात्माएं सत्य-ज्ञान की प्राप्ति और वास्तविक योग के अभ्यास से पवित्र एवं दिव्य-गुण सम्पन्न होंगी, परन्तु फिर भी अलग-अलग ही रहेंगी, क्योंकि उनकी पवित्रता तथा दिव्य-गुणों की पराकाष्ठा भी अलग-अलग होगी। परन्तु आप इसी भूल में हैं कि ब्रह्म ही एक तत्व है और आप भी ब्रह्म हैं। अब आप इस भ्रम को छोड़कर वास्तविक योग का अभ्यास कीजिए और श्रेष्ठ कर्म कीजिए। पिता परमात्मा को न मानना नास्तिकता है अथवा महादोष है। अत: आप इससे बचिए।

जिज्ञासु – आपकी बातें युक्ति द्वारा सिद्ध तो होती हैं। विवेक इन्हें काफ़ी हद तक मानता भी है। योग के अभ्यास द्वारा स्थायी आनन्द प्राप्त करने के लिए मेरे मन में प्रबल इच्छा भी है। परन्तु मेरे मन में केवल एक प्रश्न उठता है कि क्या परमात्मा नाम-रूपवाला हो सकता है जैसा कि आपने अभी बताया है? ''हम आत्माएं 'शिव' अथवा परम सत्ता नहीं हैं?'' यह विचार तो कभी-कभी पहले भी मेरे मन में उठता करता था। परन्तु परमात्मा यदि अविनाशी है और सर्वशक्तिमान् है और तीनों कालों में रहने वाला है तो वह क्या ज्योति-बिन्दु अथवा ज्योति-लिंगम हो सकता है? — यह प्रश्न मेरे मन में चल रहा है? एक और बात यह भी मैं सोच रहा हूँ कि आत्माओं के संस्कारों, विचारों,

आदि में भी मौलिक भिन्नता आप कह रही हैं, यह तो मन-बुद्धि आदि अन्त:करण के कारण ह, जो कि प्रकृतिकृत हैं। जब आत्मा इससे मुक्त हो जाती है तब तो यह अन्तर भी नहीं रहता। तब तो आत्मा एक-समान अथवा एक ही हो जाती है और वह लीन हो जाती है। और, दूसरी बात यह है कि यदि आत्माएं भिन्न-भिन्न हैं तो 'तत्वमऽसि' और 'सोऽहम्' आदि का क्या अर्थ है?

ब्रह्माकुमारी – परमात्मा का रूप ज्योति-बिन्दु हो सकता है और है। हम यह बात अपने अनुभव के आधार पर तथा दिव्य-दृष्टि द्वारा प्राप्त भगवद्-साक्षात्कारों के आधार पर कहती हैं। इस बात को कई प्रमाणों से सिद्ध किया जा सकता है। आपको हम कभी इस विषय पर अधिक स्पष्टीकरण देंगी। परन्तु आपके शुभचिन्तक होकर हम इतना अवश्य कहेंगी कि परमपिता परमात्मा को जानकर उससे योग-युक्त होने का आप पुरुषार्थ अवश्य कीजिए वर्ना सद्गति प्राप्त नहीं हो सकेगी। सभी आत्माएं आपस में भाई-भाई हैं, परमात्मा ही हम सभी के परमपिता हैं। उनसे ही हमें पूर्ण पवित्रता, सुख और शान्ति की विरासत प्राप्त हो सकती है।

अत: परमात्मा को स्वयंसे पृथक न मानना अथवा उसे पिता न मानना गोया उसकी सम्पत्ति से वन्चित रहना और अपना अकल्याण करना है। ''सर्व खल्विद ब्रह्म'' के सिद्धान्त से सब दैवी मर्यादा ही नष्ट हो गई है। अब इस मिथ्या मत को छोड़कर शिव-मत पर चलिए, भगवान् की शरण लीजिए तो आप मुक्ति के और जीवन्मुक्ति के भागी बनेंगे।

इसके अतिरिक्त, मैं आपको यह बात भी स्पष्ट करूँगी कि मन-बुद्धि आदि प्रकृतिकृत नही होती, परन्तु आप साधारण विवेक से भी सोचिए कि यदि आप मन-बुद्धि को आत्मा से अलग और प्रकृतिकृत मानेंगे तब भी तो आपका

यह जो सिद्धान्त कि ''एक आत्मा अथवा ब्रह्म के सिवाय दूसरा कुछ नहीं है'', खण्डित हो जाएगा। और यदि आप मन-बुद्धि को आत्मा से अभिन्न मानेंगे अर्थात् आत्मा ही की विचार-शक्ति को 'मन' मानेंगे और संस्कार भी आत्मा ही में तिरोहीत (Merged) मानेंगे तो फिर आत्माएं अलग-अलग तथा अनेक ही माननी होंगी क्योंकि सभी के संस्कार अलग-अलग हैं और तब तो उनका एक-दूसरे में लीन होना भी असम्भव होगा, क्योंकि अनादि काल से भिन्न-भिन्न संस्कारों वाली आत्माएं एक-दूसरे में कैसे लीन हो सकेंगी और वे कैसे अविनाशी कहलायेंगी?

पुनश्च, 'तत्वमऽसि' या 'सोऽहम्' का वह अर्थ नहीं है जो आप लेते हैं। परमपिता परमात्मा शिव जब अवतरित होते हैं और मनुष्यात्माओं को ईश्वरीय ज्ञान देते हैं तो वह उन्हें समझाते हैं कि आत्माएं पहले पवित्र थीं और अब पुन: उन्हें पवित्र बनना चाहिए। इस रहस्य को 'तत्वमऽसि' अर्थात् 'तुम (आत्मा) पहले पवित्र थे' — इन शब्दों द्वारा व्यक्ति किया गया है। और इसे समझकर, आत्मा अपने आदिम-स्वरूप को पवित्र मानकर पवित्र बनने का पुन: पुरुषार्थ करती है।

इस रहस्य को 'सोऽहम्' अर्थात् (मैं वही आत्मा हूँ जिसका आदिम-स्वरूप पवित्र था) शब्द द्वारा व्यक्ति किया गया है। अब आप इन सभी रहस्यों को समझकर, योग द्वारा पुन: पूर्ण पवित्र बनने का अभ्यास कीजिए।

अन्य धर्मों में परमात्मा के रूप के स्मरण-चिह्न

हम पिछले पृष्ठ में स्पष्ट कर आये हैं कि परमात्मा सर्वव्यापक नहीं है, अर्थात् वह सब जगह नहीं है। उसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट कर आये हैं कि आत्मा स्वयं ही परमात्मा नहीं है और परमात्मा नाम-रूप से रहित भी नहीं है, बल्कि उसका दिव्य और गुणवाचक नाम 'शिव' है और दिव्य रूप 'ज्योति-बिन्दु' है, जिसकी स्थूल प्रतिमा प्राय: सभी धर्मों वाले लोगों के यहाँ किसी-न-किसी नाम से थी या है। भारत में सोमनाथ, अमरनाथ, विश्वनाथ, महाका-लेश्वर, त्र्यंबकेश्वर आदि नामों से भी परमात्मा के इसी रूप के स्मरण-चिह्न (शिवलिंग) मिले हैं। दक्षिण भारत में रामेश्वर, वृन्दावन में गोपेश्वर और पश्चिम भारत में बम्बई के निकट अजन्ता की गुफ़ाओं में त्रिमूर्ति आदि नाम वाली प्रतिमाओं से यह सिद्ध है कि शिव, राम के भी ईश्वर हैं, श्रीकृष्ण के भी परमपूज्य हैं और त्रिमूर्ति हैं, अर्थात्, **ब्रह्मा, विष्णु और शंकर के रचयिता** हैं। वह ही पतितों को पावन करने वाले और मुक्ति देने वाले, सभी आत्माओं के भी परमपिता हैं, इसलिए वे क्रमश: 'पापकटेश्वर', 'मुक्तेश्वर' तथा 'पशुपतिनाथ' नाम से जाने जाते हैं।

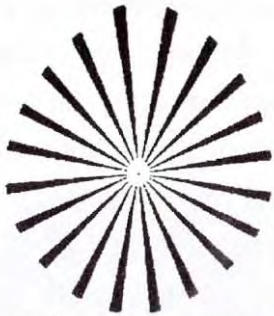

परमपिता शिव परमात्मा

मुसलमानों के यहाँ स्वयं हज़रत मुहम्मद के हाथों से मक्का शरीफ़ में रक्खा गया एक पत्थर है, जिसे मुसलमान लोग 'संगे असवद्' कहते हैं। वे उसे जन्नत से आया हुआ पत्थर मानते हैं और जो लोग भी वहाँ यात्रा (हज्ज) करने जाते हैं, वे इस पत्थर को चूमते हैं। भारतवासी इस पत्थर को 'मक्केश्वर'

कहते हैं। यह शिवलिंग जैसा पत्थर वास्तव में परमात्मा शिव ही का समरण-चिह्न है।

बाईबिल (Old Testament) में भी बताया गया है कि हज़रत मूसा जिन्हें कि यहूदी, इसाई और मुसलमान मानते हैं, ने परमात्मा के रूप का जो साक्षात्कार किया, वह भी एक 'दीप शिखा' अर्थात् दीपक की लौ-जैसे रूप वाला था। इसलिए हज़रत ईसा ने भी परमात्मा को एक 'लाइट' (प्रकाश) माना है। यह दीप शिखा जैसा रूप भी शिवलिंग-जैसा ही है। वास्तव में मन्दिरों में दीपक और गिरजाघरों में मोमबत्तियाँ उसी अशरीरी ज्योति-स्वरूप पर-मात्मा ही की याद में अथवा प्रतीक के रूप में जगाई जाती हैं।

पुराने ज़माने में यहूदी लोगों में यह रिवाज रहा है कि वे शपथ लेते समय इसी आकार का एक पत्थर हाथ में लेते थे जैसे कि भारत के लोग गीता हाथ में लेते हैं। संक्षेप में कहने का भाव यह है कि एक समय ऐसा था जबकि अन्यान्य मुख्य धर्मों के लोग भी परमात्मा का यही रूप मानते थे।

विश्व में यूनान, मि ा, रोम और बेबीलौन की सभ्यतायें प्राचीन मानी गई हैं। बताया जाता है कि यूनान में शिव-प्रतिमा को वहाँ के लोग 'फुल्लुस', मि ा के लोग 'ओसिरिस', रोम में 'प्रियपस' और बेबीलोन में 'शिउन' कहते थे। लोगों का कहना है 'फुल्लुस' शब्द 'फ़लेश' का बदला हुआ है। शिव को 'फ़लेश' भक्त इसलिए मानते थे कि वह जल्दी फल देने वाले हैं। 'ओसिरिस' नाम 'ईस' से बना हुआ बताया जाता है और 'शिउन' शब्द तो शिव से बहुत ही मिलता-जुलता है। ईसाई तथा यहूदी लोग परमात्मा को जेहोवा (Jehova) नाम देते हैं यह शब्द भी शिव (Shiv) ही का रूपान्तर मालूम होता है।

ऊपर, हमने संक्षेप में जो भी कुछेक उदाहरण दिये हैं उनसे स्पष्ट है कि

एक समय ऐसा था जब शिव को प्राय: सभी देशों, धर्मावलम्बियों तथा सभी मुख्य सभ्यताओं के लोगों में परमात्मा को इसी आकार वाला ज्योति-स्वरूप माना जाता था।

परमात्मा कहाँ है?

परमपिता परमात्मा के दिव्य-नाम और दिव्य-रूप को स्पष्ट करने के बाद अब प्रश्न उठता है कि परमपिता परमात्मा कहाँ है? अर्थात् उनका धाम कौन-सा है? आपने धर्म-विश्वासी लोगों को प्राय: यह कहते हुए सुना होगा कि – ''यह संसार तो एक मुसाफ़िरखाना है? आख़िर हमने एक दिन यहाँ से चले जाना है।'' कहाँ चले जाना है? इसका उत्तर वे देते हैं कि – ''प्रभु के पास चले जाना है।'' तो अवश्य ही प्रभु का कोई धाम होगा जो ही वास्तव में हम आत्माओं का भी आदि-अनादि घर है और जहाँ से ही हम इस कर्मक्षेत्र पर कर्म करने आये हैं! पुनश्च, लोगों को अपने अत्यन्त दु:ख की अवस्था में यह भी कहते सुना होगा कि – ''हे प्रभु! हमें अपने पास बुला लो।'' निश्चय ही परमात्मा का कोई विशेष निवास-स्थान होगा, जहाँ जाने की मनुष्य कामना करते हैं। लोगों में यहाँ तक भी परमात्मा के कोई विशेष धाम होने में विश्वास है कि कोई व्यक्ति मर जाय तो लोग कहते हैं कि वह परलोक चला गया, या कहते हैं कि – 'वह प्रभु को प्यारा हो गया।' इन दोनों मन्तव्यों का भाव यह हुआ कि परमात्मा परलोक के वासी हैं।

तीन लोक कौन-से हैं

परमात्मा शिव को 'त्रिभुवनेश्वर' अथवा 'त्रिलोकीनाथ' भी कहते हैं क्योंकि वह तीनों लोकों के नाथ हैं। वे तीन लोक कौन-कौन-से हैं इस विषय में मुख्य-पृष्ठ के पुस्तक के आवरण के प्रथम पृष्ठ का चित्र देखिए।

एक लोक तो यह है जिसमें हम अब रह रहे हैं। इसे 'मनुष्य-लोक' भी कहते हैं और 'स्थूल सृष्टि' भी। यही 'कर्म-क्षेत्र' भी कहलाता है। यहाँ हरेक आत्मा स्थूल देह धारण करती है, कर्म करती है और उसके फलस्वरूप सुख-दु:ख भी भोगती है और जन्म-मरण में भी आती है। इस लोक में संकल्प,

वचन तथा कर्म तीनों हैं। यही लोक सतयुग और त्रेता में स्वर्ग अथवा वैकुण्ठ होता है और द्वापर युग तथा कलियुग में यही नर्क होता है।

सूक्ष्म देवताओं का लोक

इस मनुष्य-लोक के सूर्य, चांद और तारागण के भी पार अथवा ऊपर एक दूसरा लोक है जिसे सूक्ष्म-लोक कहा जाता है यहाँ ब्रह्मा, विष्णु और शंकर नाम वाले देवताओं की अपनी-अपनी पुरियाँ हैं। इन देवताओं के प्रकाशमय शरीर (Angelic Bodies) हैं। इन पुरियों को तथा इनमें रहने वाले देवताओं को हम चर्म-चक्षुओं द्वारा नहीं देख सकते, बल्कि दिव्य-चक्षु अथवा दिव्य-बुद्धि द्वारा देख सकते हैं। यहाँ स्थूल मनुष्य-लोक की तरह ध्वनि या वचन नहीं है, बातचीत होती है परन्तु आवाज़ नहीं होती। यहाँ मनुष्य लोक की तरह दु:ख नहीं होते।

ब्रह्मलोक अथवा परलोक अथवा परमात्मा का धाम

सूक्ष्म देवलोक से भी परे एक अन्य लोक है जिसे 'ब्रह्मलोक', 'पर-लोक', 'शिवलोक' आदि नाम दिये जाते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में इसके बारे में कहा है कि अव्यक्त लोक से भी परे एक दूसरा अव्यक्तधाम है वही मेरा परमधाम है। भगवान् ने गीता में यह भी कहा है कि यह मनुष्य-सृष्टि एक उल्टे वृक्ष के समान है, इसका मूल ऊपर को है (क्योंकि मैं इसका बीज ऊपर हूँ) और इसके ऊपर जहाँ सूर्य, चाँद तारों आदि का प्रकाश नहीं पहुँचता, वह मेरा परमधाम है। इस लोक में न वाणी है, न कर्म। यहाँ एक सुनहरी लाल रंग का अचेतन प्रकाश व्यापक है जिसे 'ब्रह्म' कहते हैं। इस स्व-प्रकाश तत्व में स्व-प्रकाश, चेतन स्वरूप ज्योति-बिन्दु रूप परमपिता परमात्मा शिव वास करते हैं। वहाँ से ही वह धर्म-ग्लानि के समय इस मनुष्य-सृष्टि में अवतरित होते हैं और वास्तविक ज्ञान तथा राजयोग की शिक्षा देकर मनुष्यों को पतित

से पावन बनाते तथा विश्व को सम्पूर्ण सुख-शान्ति सम्पन्न बनाते हैं। उनका यह कर्तव्य वर्तमान समय चल रहा है। उन्होंने स्वयं जो अपना ज्ञान दिया है, उसी के आधार पर इस पुस्तक में परमात्मा के स्वरूप का परिचय दिया गया है।

परमपिता परमात्मा से योग-युक्त होने का अभ्यास

जो लोग परमात्मा को 'सर्वव्यापक' तथा नाम और रूप से रहित मानते हैं – वे उपासना, भक्ति अथवा योगाभ्यास के लिए उसका कोई-न-कोई रूप कल्पित करते हैं। अथवा किसी देवता के रूप पर मन को टिकाने का अभ्यास करते हैं। उदाहरण के तौर पर, कई लोग विष्णु, कई शंकर और कई श्रीकृष्ण पर मन को एकाग्र करने का पुरुषार्थ करते हैं। परन्तु जैसे कि 'रामेश्वर', 'गोपेश्वर', 'त्रिमूर्ति' आदि नामों एवं स्मरण-चिह्नों के बारे में हम स्पष्ट करते आये हैं कि ये सभी तो परमात्मा शिव की रचना हैं, परमात्मा तो ज्योति-बिन्दु स्वरूप अशरीरी (incorporeal) और सबके रचयिता हैं। उस एक परमपिता का दिव्य रूप न जानने के कारण आज लोग अपने को परमात्माके यथार्थ स्वरूप पर एकाग्र नहीं कर सकते और इसलिए वास्तविक योगाभ्यास भी नहीं कर सकते। अन्य लोग जो परमात्मा का कोई रूप नहीं मानते, वे उनके गुणों का ही मनन करते हैं। परन्तु सोचने की बात है कि गुण तो सदा गुणी में निवास करते हैं और हरेक गुणी का रूप अवश्य होता है चाहे वह कितना भी सूक्ष्म या अव्यक्त क्यों न हो।

अत: परमात्मा के बारे मे पिछले पृष्ठों में यह स्पष्ट किया गया है – उसका दिव्य नाम शिव है, दिव्य-रूप ज्योति-बिन्दु है और उसका दिव्य-धाम भी है। परमात्मा के उस धाम को ब्रह्मलोक, परलोक या परमधाम कहते हैं।

अन्य धर्मों के लोग उसे हाईएस्ट हैवन (Highest Heaven) रूहों की दुनिया, एम्पीरियन (Emperion) कहते हैं। अब परमात्मा के इस परिचय को जानकर आप स्वयं को आत्मा निश्चय करते हुए मन को परमपिता परमात्मा की स्मृति में स्थित कर सकते हैं अर्थात् योगाभ्यास कर सकते हैं। प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय के ज्ञान-केन्द्रों पर निःशुल्क ही उसकी सहज विधि बताकर अभ्यास कराया जाता है।

ओम् शान्ति